नीलजा

(द्वितीय तरंग)

संयोजन

- प्रो० लक्ष्मीनारायण सप्रू
- श्री मोती लाल 'प्रमोद'
- प्रो० चमनलाल सप्रू

ज० क० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

नीलजा

(द्वितीय तरंग)

प्रथम संस्करण १९७६-७७

मूल्य : दस रुपये

आवरण : प्रशान्तसेन

प्रकाशक
जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
लालचौक, श्रीनगर (कश्मीर)—१९०००१

मुद्रक
साधना प्रिण्टर्स, दिल्ली—३२

आमुख

कश्मीर का जन-मानस हिन्दी के प्रति जागरूक ही नहीं अपितु उत्साही भी हैं; प्रातः स्मणीय कश्यप की इस तपोभूमि में साहित्य का शृंगार करने के यथोचित अवसर भी हैं; प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानसिक नवीनता का इन्द्रधनुषी सामंजस्य यहाँ के जनजीवन का एक ज्वलन्त अध्याय है; इस प्रकार प्रकृति के प्रति अनुरक्ति मानसिक अभिव्यक्ति का पर्याय बन जाती है; जभी तो इस कुंकुम-केसर उगलने वाली दिव्य धरती साहित्य-सृजन का प्रेरणा-स्रोत्र भी कहलाती है।

जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति काश्मीरियों की इस उपजाऊ कल्पना को स्वस्थ तथा प्रांजल दिशा देने में सराहनीय दायित्व निभा रही है; हिन्दी प्रचार और प्रसार का सार्थक कार्यक्रम अपनाकर इस समिति ने हजारों हिन्दुओं और मुसलमानों को हिन्दी भाषा से परिचित कराया है; इस अहिन्दी प्रदेश में हिन्दी का उन्नयन करने में इस समिति का बड़ा हाथ रहा है। साहित्य और संस्कृति का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस तरह यह समिति हिन्दी-प्रचार के माध्यम से भारतीय संस्कृति की सतत पुष्टि कर रही है; एकता में विभिन्नता का अमर सन्देश सुना रही है।

प्रस्तुत संकलन में कश्मीर के ख्याति-प्राप्त तथा प्रौढ़ साहित्यकारों के साथ-साथ नवोदित प्रतिभा को भी यथोचित स्थान दिया गया है ताकि इसे भी विकसित होने के लिये यथेष्ट भाव-भूमि जुटाकर अनुकूल अवसर प्रदान किये जायें। प्राचीन और नवीन का पुण्य-संगम ही साहित्य को चिरस्थायी बनाता है।

'नीलजा' की यह द्वितीय तरंग आपके सामने है, इसके पृष्ठों पर यहाँ के हिन्दी प्रेमियों की धड़कनें अंकित हैं; ये मानसिक उबाल कहां तक भारतीय आदर्शों के साथ समस्वर होते हैं, इसका निणर्य आप पर ही छोड़ देना संगत होगा।

हम केवल यह जानते हैं कि हिन्दी के प्रसार से ही भारतीय मूल्यों का सोद्देश्य प्रचार हो सकता है; 'जननी जन्मभूमि' की एकस्वरता हिमालय की लाड़ली मानसपुत्री-कश्मीर के स्वतः सिद्ध फटकर कन्या कुमारी की उत्तंग लहरों से निश्चय समस्वर हो उठेगी। यही तो भारतीय जीवन का शाश्वत संगीत होगा।

क० न० द०

क्रम

निबन्ध धारा

काश्मीर शैवमत में भक्ति का स्वरूप

—प्रो० नीलकंठ गुरुटू

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्ति शालिनम् ॥

एक दार्शनिक ज्ञान के अनन्त कल्लोलों से पूर्ण मनन के अपार पारावार में डुबकी लगाकर, रहस्यमयी पर चैतन्य सत्ता के प्रकाशविस्फार का अनुभव कर लेता है। उस प्रकाशविस्फार की तीव्रता से विस्मित होने के कारण उसकी आन्तरिक आंखें मानो चुंधिया जाती हैं और वह उसी प्रकाश में एकाकारता प्राप्त करने के लिए छटपटाने और तरसने लगता है। मन में इस छटपटाहट के उत्पन्न हो जाने के प्राथमिक क्षण से ही शक्तिपात के विकास का आरम्भ समझना चाहिए। धीरे-धीरे इसी शक्तिपात के बल से उत्तरोत्तर भूमिकाओं (अपर तथा परापर भूमिकाओं) को लांघ कर अन्त में उसी अनुभूत एवं अभीष्ट प्रकाशविस्फार (परा-भूमिका) के साथ पहले तादात्म्य (पूर्ण अभेद सम्बन्ध) स्थापित करके, अन्ततोगत्वा उसी में लीन हो जाता है। इस तादात्म्य का आधार मन में विद्यमान एक अनुरागात्मिका एवं आनन्दमयी वृत्ति होती है, जिसके परिपक्व हो जाने पर उपास्य एवं उपासक के बीच में खड़े मायीय भेद प्रथा के व्यवधान ढहकर नष्ट हो जाते हैं। दोनों में एकाकारता का जो रूप उत्पन्न हो जाता है वह परा-भूमिका का विषय होने के कारण अपरा अथवा परापरा भूमिका पर सम्भव होने वाले शब्द जाल की परिधि में बांधा नहीं जा सकता है। हाँ मात्र इतना कहा या लिखा जा सकता है कि रत्न को ढूंढ़ने वाला स्वयं रत्न ही बन जाता है।

कोई भी जिज्ञासु जब तक, रत्नाकर का वक्ष चीरकर गोता लगाने वाले व्यक्ति की तरह, ज्ञान के रत्नाकर में छलांग मारकर, अत्यन्त सावधानता से विश्व के सारे प्रमातृरूप अथवा प्रमेय रूप पदार्थों का विश्लेषण करके, किसी विशेष रहस्य की टोह लगाता है, तब तक दार्शनिकता का अथवा मात्र शुष्क ज्ञान पर आधारित बुद्धिवाद का क्षेत्र कहलाता है। यहां तक के विशुद्ध ज्ञान की परिधि, शुष्कता और नीरसता से पूर्ण मरुस्थली जैसी होती है क्योंकि यहां तक जिज्ञासु तर्कों, कुतर्कों, जल्पों और वितण्डाओं का सहारा लेकर केवल बुद्धिवाद के चक्कर में भटकता रहता है। इस बुद्धिवाद के साथ हृदय के अन्तस्तल में बहती हुई रस की धारा का संगम नहीं होने पाता है। यहां तक जिज्ञासु का रूप एक साहसिक का

जैसा होता है जोकि बीच-बीच में उठने वाली नकारों, स्वीकारों, वादों और विश्लेषणों की आंधियों से टकराता हुआ, अपने अभीष्ट लक्ष्य की तलाश में आगे बढ़ता जाता है। अनन्तर वह ज्यों-ज्यों अपने अभीष्ट के निकटतम पहुंचाने लगता है त्यों-त्यों उसी अनुपात से शक्तिपात में भी तीव्रता आने लगती है। धीरे-धीरे मन में उठती हुई अशान्ति का वेग कम होने लगता है। हृदय से आनन्दमयी रस की धारा फूट पड़ती है और उस अशान्ति के स्थान पर गम्भीरता, स्निग्धता, सरसता और सात्विक शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। शैवाचार्यों का विश्वास है कि इसी समय जिज्ञासु का हृदय उपदेश के बीज के लिए उर्वर बना हुआ होता है और परमेश्वर स्वभावत: अनुग्रहशील होने के कारण, इसी समय किसी सद्गुरु के रूप में आकर, उसकी आत्मरूप के प्रकाशविस्फार की अनुपम एवं अथाह झलक का, बिजली की कौंध की तरह, क्षणिक अनुभव करा लेता है। बस, उसी शुष्क बुद्धिवादी के हृदय पर चिंगारी पड़ जाती है और वह एक ही झटके में अपने सारे तर्कों और वादों को भूलकर उसी सत्ता के साथ तादात्म्य (तन्मयीभाव) स्थापित कर लेता है। इस तन्मयीभाव का आधार उसके हृदय में विद्यमान अनुरागात्मिका वृत्ति होती है। यहां से जो क्षेत्र आरम्भ हो जाता है उसको भक्ति का क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र में पहुंचकर उसी नीरसज्ञान का स्वरूप भावात्मक हो जाता है और उसमें किसी अलौकिक प्रेरणा से स्वयं ही सरसता, स्निग्धता, स्वच्छता, गम्भीरता और शान्तिपूर्णता का समन्वय हो जाता है।

फलत: शैवाचार्यों का मन्तव्य है कि सद्-ज्ञान (वितण्डाओं से रहित शुद्ध ज्ञान) और भक्ति आपस में अन्योन्याश्रित हैं। ज्ञान के बिना भक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती है और भक्ति के बिना ज्ञान मरुस्थल है जिसमें कोई भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है।

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव मन में ही नहीं, अपितु, जड़ अथवा अजड़ के अपवादों से रहित, मानवेतर शेष सृष्टि में भी अनुरागात्मिका वृत्ति काम करती आई है। रूप प्रसार अथवा सृष्टि के उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया का मूल रहस्य भी यही वृत्ति है। इसी वृत्ति के फलस्वरूप आदिमकाल से ही भक्ति की सरस धारा का अजस्र प्रवाह बहता आया है। हमारे कश्मीर मण्डल में भी इस धारा के प्रवाह में कभी कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई है। यहां भी बहुत से भक्त-दार्शनिक व्यक्तियों ने जन्म लिया है, जिनमें महामहिम भट्टनारायण, प्रात: स्मरणीय परमेष्टि भगवान उत्पल, कश्मीर-कोकिल श्रीजगद्धरभट्ट और भगवती अम्बिका के विशेष कृपापात्र श्रीसाहिब कौल इत्यादि विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। शैव सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य का अनुशीलन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कश्मीर के शैव मतानुयायी भक्त-दार्शनिकों में से परम-माहेश्वर भगवान उत्पलदेव ही विशेष रूप में भक्ति और दर्शन की उच्चतम कोटि पर पहुंचे हुए सिद्ध हो

चुके हैं। इनके भक्ति उद्गारों में जो नैसर्गिकता, सरसता और हृदय को पिघलाने की क्षमता पाई जाती है वह अन्यत्र कहीं भी बहुत दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त कश्मीर शैव-सम्प्रदाय के भक्तिसाहित्य का साधारण रूप में और शिवस्तोत्रावली का विशेष रूप में अध्ययन करने से (खास कर गुरुओं के मुखकमल से इन भक्ति-सूक्तों में अन्तर्निहित सूक्ष्म व्यंग्य-संकेतों के समझाने से), कश्मीर के शैव-आचार्यों के द्वारा आगे बढ़ाये हुए भक्ति-मार्ग के स्वरूप का आभास मिल जाता है। संवित् मार्ग में योगाभ्यास, तपस्या, प्रत्याहार, ध्यान, अर्चा इत्यादि मायीय उपायों के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि इस मार्ग में आत्मसत्ता से अभिन्न मायाशक्ति (स्वातन्त्र्य शक्ति) के अतिरिक्त अन्य किसी भ्रमात्मक माया (अविद्या) की विद्यमानता नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि रज्जु में सर्प का भ्रम उत्पन्न कराने वाली माया की विद्यमानता स्वीकार की जाए तो वह भी शिवरूप ही होगी; उससे भिन्न नहीं। जब वह उस रूप से भिन्न नहीं होगी तो उसको अवास्तविक अथवा भक्ति कैसे कहा जा सकता है। अतः वह भी उसी शक्तिमान की निजी अभिन्न शक्ति ही है कोई भ्रान्ति नहीं। जिसका आधार सत् है वह असत् कैसे हो सकता है। सारा विश्व है तो है ही। यह तो परसत्ता का ही बहिर्मुख विमर्शरूप है अतः सत्य है और सत् है। यह कोई मायीय भ्रान्ति नहीं है। ऐसे इस अमायीय संवित्-मार्ग में शिवभाव पर आरूढ़ होने के लिए यदि कोई सर्वोत्कृष्ट उपाय है तो वह केवल भक्ति ही है—

> "न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
> अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते।"[१]
>
> (उ० स्तो०)

भगवान उत्पलदेव के भक्ति-सूक्त रस भरी द्राक्षा की वल्लरियां हैं परन्तु इनका रसास्वादन करने के लिए शैव भक्ति मार्ग के साथ सम्बन्धित कुछ छोटी-मोटी बातें समझना परम आवश्यक है। वह बातें इस प्रकार हैं :—

१. शैव नय में भक्ति का स्वरूप।
२. भक्त या उपासक कौन है ?
३. उपास्य सत्ता कौन सी है ?
४. इन दोनों में कौन सा सम्बन्ध है ?

---

१. अपनी ही अनुभूति से अनुभव में आने वाले इस अत्यन्त आनन्दपूर्ण एवं अमायीय शाक्त-पद पर आरूढ़ होने के लिए कोई योग, तपस्या अथवा अर्चा इत्यादि मायीय (अवास्तविक) उपाय काम में नहीं आ सकते हैं। अतः इस पद को प्राप्त करने के लिए भगवान शंकर की भक्ति ही सर्वोत्कृष्ट और सरलतम उपाय है।

शैव नय में भक्ति का स्वरूप

'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति सेवार्थक 'भज' धातु से होती है। इस प्रकार भक्ति शब्द का अर्थ सेवा-भाव अथवा दास-भाव लगाया जाता है। 'भाव' मन में प्रति समय उपस्थित रहने वाली वृत्ति को कहते हैं। यह वृत्तियां बहुत प्रकार की होती हैं। इनमें 'रति-भाव' नामवाली एक वृत्ति है। जिसको दूसरे शब्दों में अनुराग, आकृष्टि, या लगाव कहा जाता है। यह एक आनन्दात्मिका वृत्ति है। यह रति-भाव आलम्बनों की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्फुरित होता है। यदि इस भाव का आलम्बन कामिनी हो तो श्रृंगार के रूप में, यदि माता-पिता अथवा अन्य कोई आदरणीय ज्येष्ठ व्यक्ति हो तो स्नेह के रूप में; यदि कोई उपास्य सत्ता हो तो भक्ति (महाश्रृंगार—शिव शक्ति संयोग) के रूप में प्रकट होता है। यही कारण है कि भक्ति के मूल में अनुरागात्मिका वृत्ति काम करती रहती है। इसके साथ ही भक्ति के मूल में एक और 'निर्वेद' नामवाली मानसिक वृत्ति काम करती रहती है। 'निर्वेद' को दूसरे शब्दों में, अपनी अभीष्ट वस्तु के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं के प्रति अरुचि, विरक्ति या वैराग्य कहते हैं। अपनी अभीष्ट परमात्म-सत्ता के प्रति विशुद्ध रुचि और उससे अतिरिक्त शेष सभी निकृष्ट वस्तुओं के प्रति अरुचि या विरक्ति ही भक्ति का प्राण होता है। आत्म-सत्ता का प्रत्यभिज्ञान होने पर विश्व की सारी विभूतियां किंकरियां बन जाती हैं, अतः उस प्रिय-सत्ता को छोड़कर अन्य अशुद्ध विभूतियों के प्रति अनुराग ही कैसा ?—

"कस्य नाम करणैरकृत्रि मैः पश्यतस्तव विभूतिमक्षताम्।
विभ्रमादवरतोऽपि जायते त्वां व्युदस्य वरद ! स्तुतिस्पृहा ।।[1]

(श्रीविद्याधिपति)

रूप प्रसार का रसिक होने के कारण परम चैतन्य, अपनी ही स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति के द्वारा, अपने में ही अख्याति (अपने वास्तविक अस्पन्द एवं घन अवस्था की विस्मृति) उत्पन्न करके, अपने ही स्वरूप को संसरण (जन्म-मरण) के पापों में बांधकर पशु (पाशों में बंधा हुआ—संसार का कोई भी जीव) बन जाता है। वास्तव में पशु अथवा संसारी जीव भी अनुत्तर तत्त्व का अपना ही रूप होता है। शिव-भाव से पशुभाव पर उतरने की सारी प्रक्रिया को 'अवरोह-क्रम' कहते हैं।

---

१. हे अभेद वर देने वाले स्वामी ! तेरी ही ज्ञान क्रिया रूप विभूतियों से परिपूर्ण करणेश्वरियों के द्वारा तेरे निर्बाध पञ्चकृत्यों अथवा छत्तीस तत्वों के आरोह-अवरोह की विभूति को प्रत्यक्ष रूप में देखकर, भला, वह कौन निकृष्ट पदवी पर भी अवस्थित व्यक्ति होगा, जिसके मन में, भूल से भी, तुम जैसी उत्कृष्ट सत्ता को छोड़कर, अन्य किसी देवता की उपासना करने की इच्छा भी उत्पन्न हो सकती है ?

अवरोह क्रम में भगवान की अभिन्न स्वातन्त्र्य-शक्ति अपर या परापर (घोरतर और घोर) रूप धारण करके पशु को नीचे ही नीचे (पृथिवी तत्त्व तक) धकेलती जाती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि करणेश्वरियां (बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियवर्ग) संकोच, सावेक्ष बनने से अन्तर्मुख प्रसार से निवृत्त होकर वहिर्मुख प्रसार की ओर प्रवृत्त होती हुई पशु को सांसारिक भोगलिप्सा की ओर प्रवृत्त करती हैं :—

'विषयेष्वेव संलीनानधोधः पातयन्त्यणून् ।
रुद्राणून्याः समालिंग्य घोरतर्योऽपराः स्मृताः ।।
मिश्रकर्मफलासक्ति पूर्ववज्जनयन्ति याः ।
मुक्तिमार्गनिरोधिन्यस्ताः स्युर्घोराः परापराः ।।'[१]

(मा० वि०)

सब से उत्कृष्ट भूमिका 'शिव भाव' से, सबसे निकृष्ट भूमिका 'पशुभाव' तक सरक जाने की इस सारी प्रक्रिया में रुद्रशक्ति घोरतर या घोर होने के कारण तिरोधानात्मिका होती है। तिरोधान से ही परमात्मरूप की स्वच्छता पर आणव, मायीय और कार्ममल की धनी कालिमा के दुर्मेघ स्तर छा जाते हैं और वास्तविकता विस्मृति के गहरे गर्त में डूब जाती है। स्मरण रहे कि रुद्रशक्ति का घोरतर रूप अत्यन्त तामसिक भेद दशा में, घोर रूप रजस् और तमस् की मिश्रित अवस्था भेदाभेद दशा में और अघोररूप मात्र सात्विक प्रकाश से परिपूर्ण अभेद दशा में कार्यनिरत होता है।

अनुत्तर चैतन्य रूप-प्रसार का रसिक है। वास्तव में रूप-प्रसार ही चैतन्य है। जो रूप-प्रसार नहीं है वह चैतन्य न होने के कारण कुछ भी नहीं है। शैव शब्दों में रूप-प्रसार को ही 'आनन्द शक्ति' कहते हैं और इसी से बाह्य-आभास (जगत्) का उत्तरोत्तर प्रस्फुरण (विकास-क्रम) चलता रहता है। 'रूप-प्रसार' शब्द से अनुत्तर तत्व के, सृष्टि, स्थिति, संहार, विधान और अनुग्रह इन पांच कृत्यों का अभिप्राय है। यह पांच कृत्यों प्रतिसमय विश्व के कण-कण में एक साथ ही चलते रहते हैं। स्मरण रहे, इन सबका मूल अनुग्रह ही होता है। ऊपर जिस 'तिरोधान' का उल्लेख किया गया है वह भी वास्तव में अनुग्रह ही होता है। फलतः जहां एक ओर अवरोह-क्रम में भगवान अख्याति के दुर्भेद्य अन्धकार को सृजन करके अपने

१. वह रुद्र शक्तियां (एक ही शक्ति के अनन्त रूप) अपरा कही जाती हैं जो कि घोरतर रूप धारण करके अणुओं (सांसारिक पशुवर्ग) को अपनी जकड़ में फंसाकर निरन्तर विषयों के उपभोग की ओर ही लगाती हैं और नीचे ही नीचेधकेलती रहती हैं। जो शक्तियां घोर रूप धारण करके, पहले रूप की तरह ही, पशु वर्ग को बराबर अनुपात से, अच्छे और बुरे कर्मों को करने और उनके फल का उपभोग करने की ओर लगाकर, मुक्ति के मार्ग में रुकावट डाल देती हैं, उनको परापरा शक्तियां कहते हैं।

ही स्वरूप को पशुता की ओर धकेलते हैं, वहां दूसरी ओर पशुभाव पर अवस्थित स्वरूप को आरोह-क्रम की सीढ़ी पर चढ़ाकर शिवभाव पर पहुँचाने का अनुग्रह भी करते रहते हैं। संक्षेप में भाव यह है कि भगवान का पंचकृत्य प्रतिक्षण एक साथ ही चलता रहता है। ऐसी परिस्थिति में भगवान जिस पर अनुग्रह करते हैं उस पशु में अपनी अभिन्न रुद्रशक्ति के अघोर रूप का समावेश करते हैं:—

"एवमस्यात्मनः काले कस्मिंश्चिद्योग्यतावशात्।
शैवी सम्बन्ध्ययते शक्तिः शान्ता मुक्तिफल प्रदा।"[१]

मा० वि०

पशु के हृदय में शिवभाव पर आरूढ़ होने की प्राथमिक इच्छा का उत्पन्न होना ही भगवान के अनुग्रह का प्रथम अविर्भाव समझना चाहिये। अघोरा रुद्र-शक्ति का समावेश हो जाने पर पशु को किसी अचिन्त्य दिव्य प्रेरणा से ही किसी सिद्ध गुरु के साथ साक्षात्कार हो जाता है। गुरु भी स्वयं ईश्वर स्वरूप ही होते हैं जोकि भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए परा-भूमिका से परा-भूमिका पर अवतीर्ण होकर रहस्य के उपदेश से उनका उद्धार करते हैं:—

"रुद्रशक्ति समाविष्टः स यियासुः शिवेच्छया।
भुक्ति-मुक्ति प्रसिद्धयर्थं नीयते सद्गुरुं प्रति।।"[२]

मा० वि०

ऐसे सिद्ध सद्गुरु के चरण कमलों की प्रह्व भाव से आराधना करने से पशु को अपने में ही तिरोहित अथवा विस्मृत शिवभाव का आभास हो जाता है। उसको उसी क्षण उसके प्रति पूर्ण प्रगाढ़ अनुरक्ति हो जाती है। अनुरक्ति का उत्पन्न होना ही भक्ति की पहली सीढ़ी है। यही से मानव का प्रवेश भक्ति के क्षेत्र में हो जाता है। शिवभाव की महानता और अपमे जीव भाव की हीनता का अनुभव होने से ऐसे भक्त के हृदय में उसके (शिवभाव) के प्रति प्रह्वता उत्पन्न हो जाती है, 'प्रह्वता' शब्द का अर्थ कायिक, वाचिक एवं मानसिक तादात्म्य या तद्रूपता (अभेद-भाव) होता है। शनैः शनैः इसी तादात्मय भाव पर आरूढ़ होने से उसके सामने प्रथम और मध्यम पुरुष उत्तम पुरुष में ही लीन हो जाते हैं और मात्र 'विशुद्ध अहंभाव' अवशिष्ट रह जाता है। सांसारिक अहंमन्यता का मद श्रीभार्तृहरि के

---

१. इस प्रकार किसी समय ईश्वर की इच्छा से इस पशुभाव में पड़ी हुई आत्मा में ऐसी विशिष्ट योग्यता उत्पन्न हो जाती है कि उसको भोगरूप और मोक्षरूप सिद्धियों को प्रदान करने वाली शांकरी शक्ति (अघोरा) के साथ संयोग हो जाता है।

२. रुद्र शक्ति का समावेश होते ही, उस मुक्ति की कामना करने वाले साधक को, परमेश्वर की इच्छाशक्ति के द्वारा किसी सिद्ध सद्गुरु के पास बलपूर्वक खींचकर लिया जाता है। गुरु के कृपाकटाक्ष से ही उसको भोगरूप और मोक्षरूप सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं।

कथनानुसार ज्वर की तरह उतर जाता है। इसी दशा को दूसरे शब्दों में 'भैरव-दशा' भी कहते हैं। भक्त को इस पदवी पर आरुढ़ कराने वाली वही पूर्वोक्त अघोरा रुद्रशक्ति (अनुग्रह) होती है:—

"पूर्ववज्जन्तु जातस्य शिवधामफलप्रदा।
परा प्रकथितास्तज्ञै रघोराः शिवशक्तयः॥"[1]

मा० वि०

शिव भाव का समावेश अनेक रूपों में होता है। शैवशास्त्रों में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। साधारण रूप में इसके आणव, शाक्त और शांभव यह तीन रूप होते हैं। इनमें से शाम्भव-समावेश सब में उत्कृष्ट, परन्तु अत्यन्त दुर्लभ, शाक्त समावेश पहले से कुछ ही कम और उत्तम अधिकारियों को प्राप्त होने वाला, आणव-समावेश सब से निकृष्ट और अवर अधिकारियों का विषय माना गया है। पात्रों की उत्तमता या अवरता भगवान के अनुग्रह के स्तर पर निर्भर होता है। इस लेख का विषय अन्य होने के कारण समावेशों पर अधिक लिखना युक्तिसंगत नहीं लगता है परन्तु भक्तजनों को चाहिये कि वे इस विषय में शास्त्रों के अनुशीलन के साथ-साथ सद्गुरुओं से भी परमर्श लेवें।

ऊपर कहा गया है कि परमेश्वर स्वरूप सद्गुरु के अनुग्रह से (यदि उनके हृदय पसीजें तो) साधक को शिवभाव की अनुभूति हो जाती है। अनुभूति के साथ ही उसके प्रति अनुरक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। वह उस भाव पर पूर्णतया आरूढ़ होने के लिए उसी प्रकार छटपटाता हुआ प्रयत्नशील बन जाता है जिस प्रकार जल से बाहर निकाल कर किनारे पर फैंकी गई मछली, फिर भी पानी को पाने के लिए तड़पती हुई प्रयत्नशील बन जाती है। उस समय अपनी प्रिय वस्तु को छोड़कर अन्य किसी भी वस्तु का ध्यान न रहने के कारण 'विगलित वेद्यान्तरता' उत्पन्न हो जाती है। 'विगलितवेद्यान्तरता' को ही शैव शब्दों में 'प्रह्वता' आर्थात् कायिक, वाचिक एवं मानसिक पूर्ण आत्म समर्पण अथवा यों कहिये पूर्णरूप में 'सर्वभावसमर्पण' कहते हैं। फलतः शिवभाव के प्राथमिक अनुभूतिकाल से लेकर, उस पर पूर्ण आरूढ़ होने के काल तक जो बीच की एक कठिन मंजिल पार करनी होती है उसको यदि भक्ति की मंजिल कहा जाये तो ठीक ही है। इस अन्तर में भक्त के हृदय में जो कोई अवर्णनीय, अनुराग पर आधारित और अत्यन्त आनन्दपूर्ण मानसिक भाव काम करता रहता है। उसको

---

१. अनुभवी सिद्धपुरुष उन रुद्र शक्तियों को परा नाम से पुकारते हैं जो अघोर बनकर संतरण के चक्र में घूमते हुए पशुओं को शिव-भाव पर पहुंचाने का सर्वोत्कृष्ट फल देती हैं। यह शक्तियां भी पहली शक्तियों की तरह कार्यनिरत होती हैं। अर्थात् जहां घोर, तरा और घोरा जीव भाव के अथाह सागर में डुबो देती है वहां अघोरा उससे उबारकर शिव भाव पर प्रतिष्ठित करती है।

'भक्ति-भाव' कहते हैं। मन में यद्यपि 'भक्ति-भाव' उदित होने के साथ ही भक्त की शारीरिक एवं मानसिक अवस्था भगवान उत्पल के शब्दों में लघु, मसृण, सित, अच्छ और शीतल बन जाती है। यह अवस्था रुद्रशक्ति के समावेश से हो जाती है। पाठकों से अनुरोध है कि वे इन 'लघु' इत्यादि शब्दों का अर्थ, किसी कोश इत्यादि में देखने के साथ-साथ सिद्ध पुरुषों के मुखकमलों से भी सुनने का प्रयत्न करें। वास्तव में भक्ति-भाव के स्वरूप को शब्दों की परिधि में बांधनी संभव नहीं हो सकता है। इसके स्वरूप को यथावत् रूप में समझने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति इसको अपने मानसिक अनुभव से ही समझ सकता है। कश्मीर के प्रसिद्ध भक्त-कवि श्री जगद्धर भट ने भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"द्राक्षा साक्षादमृतलहरी कर्कशात् काष्ट कोषाद्।
भूरिच्छिद्रात्प्रकृतिमधुरा मूर्च्छना वंशगर्भात्॥
सूक्तिव्याजान्मम च वदनात्कर्ण पेया सुधेयं।
निर्गच्छन्ती जनयति न कं विस्मयस्मेरवक्त्रम्॥"[1]

"नाथ! ज्योत्स्ना बहल रजनौ कार्तिकीयेव कान्ता।
कान्तारान्तर्मथित पथिक प्रौढ़तापा प्रपेव॥
मा मा भैषीरिति यमभये तावकीनेव वाणी।
भावत्की मे सततममृत स्यन्दिनी भाति भक्तिः॥"[2]

स्तु० कु०

वास्तव में भक्ति-भाव के स्वरूप के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह केवल भगवान का अनुग्रह ही होता है। यह तो किसी के अपने बस की बात नहीं है। ...

परिनिष्ठित भक्ति शालियों की उच्चतर भूमिका का शास्त्रीय नाम 'क्रम-

---

१. संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसका मुख, कानों के द्वारा सुने जाने की अपेक्षा पिये जाने के योग्य शिवभक्ति के अमृत को पीकर विस्मय (एक योग भूमिका) से खिल नहीं जाता है। यह शिवभक्ति अत्यन्त कठिन लकड़ी (संसार का सारा व्यवहार) के ही बीच में से निकली हुई अमृत की लहर जैसी दाख के समान अथवा अनेक छेदों वाली (सांसारिक दोष) मुरली के बीच में से निकली हुई स्वभाव से ही सुरीली तान जैसी होती हुई, मेरे मुख से सूक्तियों के रूप में बाहर प्रवाहित हो रही है।

२. हे स्वामी! कृष्णपक्ष की प्रगाढ़ अन्धेरी रात में कार्तिक की मनोहर चाँदनी जैसी, भयानक मरुस्थल में चलने वाले प्यासे पथिकों की प्यास को बुझाने वाली प्याऊ जैसी, महाकाल का भय सामने आने पर 'मत डरो, मत डरो' इस प्रकार आपके मधुर बोलों के समान, अमृत का वर्षण करने वाली, आपकी भक्ति मुझे प्राणों से भी प्यारी लगती है।

मुद्रा' होता है। इस अवस्था में करणेश्वरियों का प्रसार बहिर्मुखता से निवृत्त होकर अन्तर्मुख हो जाता है और साधक में कुछ ऐसी पटुता आ जाती है कि वह क्षणमात्र में विद्युत्गति से, अन्तर्मुख होकर आत्मसत्ता का साक्षात्कार कर लेता है और फिर पलकभर में बहिर्मुख हो जाता है। उसके लिए यह प्रतिसमय का व्यवहार ही जैसा बन जाता है। उठते बैठते, चलते-फिरते अर्थात् संसार के सारे काम करते रहने पर भी उसकी संवित् अन्दर के उस अनिवर्चनीय संकेतस्थल पर जाकर रस समुद्र में डुबकी लगाती रहती है:—

"वाराङ्गनैषाप्यथ राजवीथी प्रविश्य संकेतगृहान्तरेषु।
विश्रम्य विश्रम्य वरेणा पुंसा संगम्य संगम्य रसं प्रसूते।।"[१]

फलत: अभ्यास के द्वारा साधक में ऐसी पटूता आ जाती है कि वह किसी समय पूर्ण 'शिव-भाव—आत्मभाव' पर आरूढ़ होकर जगदानन्द की उच्चतम भूमिका प्राप्त केरके कृतकृत्य हो जाता है।

अब यह विचारणीय है कि भक्त कौन होता है? शैवमत के अनुसार प्रत्येक प्रमाता (धर्म, मत, उत्तम, उद्यम, स्त्री, शूद्र इत्यादि सीमाओं के प्रतिबन्ध के बिना) भक्त होता है। प्रत्येक प्रमाता के हृदय में उत्तरोत्तर महान वस्तु के प्रति अनुरक्ति और उसको प्राप्त करने की उत्सुकता जागरूक होती है। सांसारिक सुख भोग और उच्च पद इत्यादि भी कोई अपवाद नहीं है। ध्यान में रखे जाने की बात तो यह है कि उच्चतर भूमिका चाहे सांसारिक हो या आध्यात्मिक वह तो शिवभाव का ही कोई नकोई स्तर होता है।कारण यह है कि परशिवसत्ता के रूप-विस्तार को छोड़कर और किसी दूसरी स्वतन्त्र(अपरमुखापेक्षी) सत्तर की विद्यमानता न तो है और न संभव ही हो सकती है। स्पष्ट है कि संसार का प्रत्येक प्राणी उत्तरोत्तर उच्च पदवियों पर आरूढ़ होने का उत्सुक होने के कारण वास्तव में शिवभाव पर चढ़ने के मार्ग का ही पथिक होता है। अतः साधारण रूप में संसार का प्रत्येक प्रमाता भक्त ही है। अब कोई प्रमाता परसत्ता के विशेष अनुग्रह का पात्र बनकर उसी सत्ता के प्रति अनुरागशील हो जाता है। उसको भक्तिशाली कहा जाता है क्योंकि वह सारी विभूतियों (सांसारिक या आध्यात्मिक) विभूतियों की मूलभूत विभूति को प्राप्त करना चाहता है।

शैव शास्त्रों में भक्तिशाली साधक को दास का नाम दिया गया है क्योंकि दास उसी का कहा जा सकता है जिसको मालिक अपना सर्वस्व देकर ही रहता

१. जिस प्रकार एक वीरवनिता राजवीथी में घुसकर और किसी उत्तम पुरुष (राजा इत्यादि) के साथ संकेत स्थलों पर संगम प्राप्त करके रस से सराबोर हो जाती है, उसी प्रकार साधक की संवित ऊर्ध्व मन्डल में घुसकर किसी रहस्यपूर्ण संकेत स्थल पर वर पुरुष (आत्मस्वरूप) के साथ ठुमक-ठुमक कर (क्रम मुद्रा) संगम प्राप्त करती हुई रस की धार बहाने लगती है।

है। अपने पास कुछ भी नहीं रखता है, दीयते सर्वम् अस्मै इति दास: । कोई-कोई विरला भक्त ही इस दास पदवी पर पहुंच पाता है क्योंकि ऐसा दास तो साक्षात् शिवस्वरूप ही होता है।

दास की भक्ति 'स्वभाव सिद्ध' होती है। इसका अभिप्राय यह है कि परम-शिव प्रत्येक जड़ अथवा चेतन वस्तु की आत्मा होने के कारण भक्त की आत्मा भी होता है। अपनी आत्मा के प्रति प्रत्येक का अनुराग शील होना स्वाभाविक ही होता है। फलत: यह कहना ठीक है कि वास्तव में दास के रूप में भगवान स्वयं अपनी आत्मा के प्रति अनुरागी होता है। अत: भक्ति भी वास्तव में "स्वभाव सिद्ध होती है:—

"त्वमे वात्मेश ! सर्वस्य-सर्वपूचात्मनि रागवान्।
इति स्वभावसिद्धां त्वद्भवितं जानञ्जयेन्नर: ।।"[1]

शि० स्तो०

ऐसे दास केवल समाधि दशा में ही नहीं, प्रत्युत प्रमातृभाव और प्रमेय भाव के संघर्षों से पूर्ण व्युत्थान दशा में भी अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करते रहते हैं:—

"नाथ वेद्यक्षये केन न दृश्योऽस्येकक: स्प्यत:।
वेद्यवेदक संक्षोभेऽप्यसि भक्तै: सुदर्शन: ।।"[2]

शि० स्तो०

शैवशात्रों में दास-भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। इतनी ही नहीं अपि तु दास-भाव ही जगदानन्द पदवी पर आरूढ़ होने का मात्र माध्यम है।

अब यह चिन्तनीय है कि दास के दास-भाव (भक्ति) का आलम्बन कौन है? भक्ति का आलम्बन अपनी आत्मसत्ता को छोड़कर और कोई नहीं है। श्री सोमानन्द- पाद ने शिवदृष्टि में इस विषय को भली भान्ति स्पष्ट किया है:—

'अस्म द्रूपसमाविष्ट: स्वात्मनात्म निवारणे।
शिव: करोतु निजया नम: शक्त्या ततात्मने ।।'[3] शि० दृ०

---

१. हे मेरे स्वामी ! तुम्हीं तो प्रत्येक पदार्थ की आत्मा हो। अपनी आत्मा के प्रति प्रत्येक पदार्थ अनुरागपूर्ण होता है। अत: आपकी ऐसी स्वभावसिद्ध भक्ति को जो भक्त समावेश के द्वारा जान सकता है, उस भक्त को प्रणाम हो।

२. हे मेरे स्वामी ! समाधि दशा में प्रत्येक प्रमेय पदार्थ का प्रमातृभाव में ही लय होने के कारण केवल आपकी अकेली सत्ता ही अवशिष्ट रह जाती है। अत: उस समय कौन आपको अकेला देख नहीं पाता है ? परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ज्ञेय और ज्ञातृ भाव की संक्षुभित अवस्था (व्युत्थान) में भी भक्तिशाली लोग आपको सहज ही में देखते रहते हैं।

३. इस कारिका का अभिप्राय ऊपर ही स्पष्ट हो चुका है।

वास्तव में विश्व का प्रत्येक जड़ एवं चैतन्य पदार्थ (छत्तीसों तत्व) भगवान का विग्रह (शरीर) होता है। संसार की क्रीड़ा करने का रसिक होने के कारण वह स्वयं उत्पादित अख्याति के द्वारा सारे प्रमातृरूप अथवा प्रमेयरूप भावों को अपने स्वभाव से भिन्न जैसे रूप में आभासित करता है। इस प्रकार स्वयं ही देह, प्राण, नील, सुख इत्यादि प्रमातृरूपों को और छूट, पट, सयाणु इत्यादि प्रमेय रूपों को धारण करके 'अहम्' रूप उत्तम पुरुषता को छोड़कर 'इदम्' रूप प्रथम या मध्यम पुरुषता पर आधारित भेद सर्ग की रचना करता है। फिर किसी समय उन्हीं भेद पदवी पर आधारित भावों को, समावेश के द्वारा, आत्मसत्ता से अभिन्न 'अहम्' रूप में विलीन करता है। इसी को शिव भाव पर आरूढ़ होना कहा जाता है। फलत: ऊपर लिखी हुई कारिका में यह स्पष्ट किया गया है कि विश्व के प्रत्येक, शुद्धाध्व अथवा अशुद्धाध्व पर अवस्थित, भाव का वास्तविक आत्मा बना हुआ परम शिव, स्वयं अपने ही अख्याति रूप भ्रम को दूर करने के लिए, अपने ही, पर, परापर और अपररूप अनन्त विस्तार वाले रूप को, स्वयं ही प्रणाम करता है। जो प्रणाम करता है वह भी शिव है; जिसको प्रणाम करता है वह भी शिव है; जिन बाह्यकरण अथवा अन्त:करणों से प्रणाम करता है वह भी शिवरूप ही हैं; और स्वयं प्रणाम करने की इच्छा, प्रणाम का ज्ञान और प्रणाम की क्रिया भी शिव ही है। अत: स्पष्ट है कि भक्त स्वयं भी शिव है और उसकी भक्ति का आलम्बन भी शिव ही है।

शैव सिद्धान्त के अनुसार उपास्य एवं उपासक सत्ता मेंअ भेद सम्बन्ध के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। अपर या परापर भूमिकाओं पर पशुता के कारण चाहे भेद की प्रतीति हो और अन्य सम्बन्ध देखने में आवें परन्तु पराभूमिका पर न तो भेद प्रतीति की कल्पना ही की जा सकती है और न अभेद को छोड़कर अन्य कोई सम्बन्ध ठहर सकता है। शैवागमों में तादात्म्य भाव से इसी अभेद सम्बन्ध का ही अभिप्राय है। पूर्णता दाम्य या तन्मयीभाव पूर्ण अभेद ही होता है। भगवान उत्पलदेव ने अपनी 'सम्बन्ध सिद्धि' नामक कृति में इस विषय की अच्छी विश्लेषणा की है परन्तु इस लेख में उतने विस्तार के लिए अवकाश नहीं है। अत: यहां केवल इतना कहकर ही संतोष किया जाता है कि भक्त और भक्ति का आलम्बन दो पृथक सत्तायें नहीं हैं। दोनों में पूर्ण अभेद है। पूर्ण अभेद का ही दूसरा नाम 'अहम्' होता है।

लेख को समाप्त करने से पहले भगवान उत्पलदेव की स्तोत्रावली से भक्ति-सूक्तों के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना युक्ति संगत प्रतीत होता है :

[१]

यो विचित्र रस सेकवर्धित:
शङ्करेति शतशोऽभ्युदीरित: ।
शब्द आविशति तिर्यगाशये—
ष्वप्ययं नव नव प्रयोजन: ।।
ते जयन्ति मुखमण्डले भ्रमन्
अस्ति येषु नियतं शिवध्वनि: ।
य: शशीव प्रसृतोऽमृताशयात्
स्वादु संस्रवति चामृतं परम् ।।

विस्मय (एक योग भूमिका) में डालने वाले आत्म समावेश के अलौकिक चमत्कारपूर्ण आनन्द रस के द्वारा सीधा जाकर विकास में आया हुआ और सैकड़ों बार उच्चारण किया हुआ 'शंकर' यह शब्द पशुओं के मलिन हृदयों में भी निरंतर नये ही नये आस्वाद (चर्वणा, चमत्कार, अनूठा आनन्द) की सृष्टि करता हुआ प्रस्फुरित होता है।

यह 'शिव' शब्द चन्द्रमा के समान अमृतकला (चिद्घन परमेश्वर स्वरूप) से ही प्रस्तुत होकर परम मधुर अमृत रस बहाता रहता है। ऐसी अचिन्त्य महिमा से युक्त, 'शिवध्वनि' जिन भक्त पुरुषों के मुखमण्डलों में प्रति समय गुंजरित होती रहती है वे ही महान होने के कारण चरण वन्दना करने के योग्य हैं।

[२]

न किल पश्यति सत्यमयं जन—
स्तव वपुर्द्वयदृष्टि मलीमस: ।
तदपि सर्वविदाश्रितवत्सल:
किमिदमारटितं न शृणोषिमे ।।

(हे मेरे नाथ !) यह बात सच है कि मैं भेद दृष्टि के द्वारा इतना पतित हो गया हूं कि मुझे आपका चिदात्म रूप (जो कि विश्व के कण-कण में व्याप्त होता है) दिखाई नहीं देता है। परन्तु तो भी आप सब कुछ जानने वाले और शरणागतों के प्यारे होकर भी मेरी इस रुदन भरी गुहार को क्यों नहीं सुनते हो ?

[३]

स्मरसि नाथ ! कदाचिदपीहितं
विषय सौख्यमथापि मयार्थितम् ।
सततमेव भवद्वपुरीक्षणा
मृतमभीष्टमलं मम देहि तत् ।।

मेर स्वामी ! क्या आपको ऐसा कोई अवसर याद है जबकि मैंने विषयों का

सुख भोगने की चेष्टा भी की हो या आप से ऐसी कोई मांग की हो ? मैं आपसे सच कहता हूँ कि मुझे प्रति समय आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने के अमृत का पान करना ही अभीष्ट रहा है। अतः आप मुझे वही दीजिए। बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

[४]

नाथ विद्युदिव भाति विभा ते
या कदाचन परामृत दिग्धा।
सा यदि स्थिरतरैव भवेत्तत्
पूजितोऽसि विधिवत्किमुतान्यत् ।।

हे मेरे नाथ ! कभी-कभी (केवल समाधि-दशा में ही) जो आपकी अमृत से सनी हुई प्रभा मेरे अन्तर में बिजली की रेखा जैसी कौंध जाती है। अगर उसकी वह कौंध व्युत्थान दशा में भी स्थिर रहने पाती तो मैं समझता कि आपकी अर्चना विधिपूर्व हो गई है। मेरे लिए आपकी ऐसी अर्चना कर सकने के अतिरिक्त और कोई अभिलाषणीय फल क्या होता ?

[५]

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम् ।।

मैं उस भक्तिशाली पुरुष (भक्ति की उच्चतर भूमिका शांभव-समावेश पर पहुंचे हुए व्यक्ति) की वन्दना करता हूं जिसको ध्यान या जप करने के बिना और किसी निश्चित क्रम के बिना, ऐसे ही (केवल ईश्वर के अनुग्रह से) शिवत्व का आभास हो। (इस पद्य में जिस आकस्मिक शांभव-समावेश का संकेत दिया गया है वह अत्यन्त वांछनीय परन्तु अत्यन्त दुर्लभ होता हैं)।

इति शिवम्

———

भाषा-वैज्ञानिक साक्ष्य के आधार पर कश्मीर के प्रागैतिहासिक लोग

—डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू

कश्मीर भारत का उत्तरीय सीमान्त है और एशिया महाद्वीप में कश्मीर उपत्यका सबसे सुन्दरतम समझी जाती है। इसके भौगोलिक[1] मानचित्र के उत्तर में गिरिगर्त[2]—आधुनिक गिलगित की संकलित छोटी सुन्दर घाटी है। इसके पूर्वोत्तर कोण में होंजा (हंसायन) और नागर घाटियाँ हैं। गिलगित के पश्चिम में चित्राल अथवा चित्रकालय इसकी सीमा है। विगत इतिहास की उषा में चित्राल चित्रक वण्यपशु का गढ़ समझा जाता था। चित्राल के पश्चिमोत्तर में हिन्दू-कुश पर्वत मालों की शृंखलायें उत्तरोत्तर प्रवृद्धि के साथ पश्चिमोत्तर की तरफ खिसकती हैं। कश्मीर के उत्तर में २६६२८ फीट की उत्तुङ्गता पर नंग (नग्न) पहाड़ है। इसके दक्षिणीय भू-भाग में इतिहास-प्रसिद्ध 'शारदा' का तीर्थ है। इस तीर्थ के सनातन गौरव के कारण कश्मीर देश का नाम "शारदा-देश" भी पर्याय के रूप में प्रचलित हुआ है। कश्मीर की प्राचीनतम लिपि को इस तीर्थ के अपार गौरव के कारण "शारदा-लिपि" नाम पड़ा। अब भी ब्राह्मण वर्ग में इस लिपि का प्रचलन होता है विशेषकर पंचांग, जन्मपत्र और कर्मकाँड की पुस्तकों के रूप में। इस लिपि का सर्व प्राचीन लेख लाहौर म्यूजियम में सुरक्षित है, जो ई० आठवीं शती का है। शारदा तीर्थ के पादमूल में कृष्ण गंगा प्रवाहमान होती है। नंगा-पर्वत (नग्न पर्वत) के उत्तर में विलास[3] (बौद्ध चर्या-स्थान का भू-भाग है। पश्चिम दिशा में जलकोट है (ज्वालाकोट)। यहां पर ज्वाला माँ का स्वरूप उद्गम था, और पूर्व में अस्टोर (प्रस्तार-तरण) और सुदूर पूर्व में बलतिस्तान है। बलतिस्तान के उत्तर-पूर्व में कराकोरम की दुर्गम पर्वत शृंखलायें हैं जो पूर्वोत्तर छोर पर १८५५० फीट की ऊँचाई पर एक दर्रा बनाती है। बलतिस्तान के पूर्वोत्तर में २५६७६ फीट और २६४८३ फीट की ऊँचाई पर महेश-ब्रोर (महेश्वर-भट्टारिका) और गाशबोर (प्रकाश-भट्टारिका) के दुर्गम पर्वत शृंग है जिनके निम्न शिखरों पर "अमरेश्वर" (आधुनिक[4] अमरनाथ यात्रा) का नैसर्गिक हिमलिंग

१. महाभारत : युद्ध पर्व
२. Imperial Gazetteer of India 1908 (Map)
३. गिलगित मैनस्क्रिप्ट—भाग I
४. अमरेश्वर महात्म्य (श्री प्रो० गुर्टू, यक्ष एवं हुण्डू द्वारा सम्पादित)

अवस्थित है। कश्मीर के पूर्व में बलतिस्तान का प्रसिद्ध नगर लद्दाख आता है। लद्दाख में इस समय अधिकाँश मंगोल जाति के लोग रहते हैं किन्तु सद्य प्रकाशित लद्दाख[1] पुस्तक के लेखक श्री गिरगिन के शोध से पता चलता हैं कि मंगोलों के आने से पूर्व यह भू-भाग आर्यों द्वारा आवासित था और कालान्तर में तिब्बत की सैनिक शक्ति के बढ़ने से तथा मंगोलों के प्रत्याक्रमण से आर्यों को यह स्थान छोड़ना पड़ा। आर्य भाषा के अवशेष अभी भी बलती भाषा में विद्यमान[2] है। लद्दाख के दक्षिण और कश्मीर के दक्षिण-पूर्व में जांस्कर का बलती भाषा-भाषी भू-भाग पड़ता है। इस प्रदेश को जाने के लिए कष्टवार के पूर्वोत्तर से भी सनातन वीथियां रही हैं।

कश्मीर के पश्चिम में हजारा का विस्तीर्ण भू-भाग है, इसी से संलग्न भूखण्ड अक्तूबर १६४७ से पूर्व कश्मीर का एक मण्डल था जिसे मुजफराबाद कहा करते थे। वास्तव में यह सारा भू-भाग महाभारत काल में अभिसार कहलाता था। कश्मीर के दक्षिण में पर्णोत्स—आज का पुंछ प्रदेश और राजवाटिका है। श्रीनगर के पश्चिमोत्तर में वोलर—सरोवर (उल्लोल) है यह सरोवर राजतरंगिणी और ह्यूनत्सांग के यात्रा वर्णन में महापद्मसर के नाम से प्रसंगित है। कश्मीर के सुदूर, उत्तर में हर-मुकुट गंगा (१६०१५ फीट) का इतिहास प्रसिद्ध तीर्थ है। भारतीय पुराणों में यह पाताल[3] गंगा के नाम से अधिक परिचित है। हरमुकुट गंगा के उत्तर में राजधानी पर्वत शृंग आता है इसके उत्तर में दरद-श्रिण्या भाषा-भाषी गुरेस [स्थानीय भाषा में "गुरैय," संभवतः गिरि+आलय[4] का अपभ्रंशित रूप रहा हो] अथवा गुरेज प्रदेश आता है। गुरेज के पूर्वोत्तर में बलती भाषा का भू-भाग है और और पश्चिमोत्तर में श्रिण्या, काफिरी और खोवार के भाषात्मक भू-भाग आते हैं।

---

१. गिरगिन:—लद्दाख का इतिहास (बलती भाषा एवं लिपि में प्रकाशित) श्री गिरगिन प्रथम लद्दाखी हैं जिन्होंने अपने देश का इतिहास नवीन शोध पद्धति से तथा वास्तविक तथ्यों के आधार पर इस महार्घ ग्रंथ का प्रकाशन किया है लेखक।

२. अथर्वसंहिता के आधार पर इस शंका का समाधान विशदता से किया जा सकता है कि बलतिस्तान के प्राचीन आर्य भाषा-भाषी लोग बाह्लीक के वे आर्यजन ही रहे होंगे जो असुरों के दमन-चक्र के कारण लद्दाख की ओर खिसककर बहुत समय तक लद्दाख में रहे होंगे क्योंकि "अद्रेतर: जम्मू" सम्भवत: इस तथ्य का उल्लेखनीय साक्ष्य है किन्तु इस दिशा में विशेष शोध की आवश्यकता है इस तथ्य से यह भी स्पष्ट होगा कि प्रागैतिहासिक काल में तिब्बत के पामीर-पठार आर्यों द्वारा ही आवासित थे और मंगोल-पर्यटक बाद में हुआ है—लेखक

३. पद्म पुराण।

४. कल्हण:—राजतरंगिणी ८/१६६६

कश्मीर के दक्षिण में बानिहाल[1] (वनशाला) पर्वत शृंखलाओं का दीर्घकाय सिलसिला विस्तारित होता है। बानिहाल के दक्षिण में—कष्टवार (काष्टवाट) और भद्रवाह (भद्रवाहिनी) के आंचलिक प्रदेश आते हैं। कश्मीर के दक्षिण में अनन्तनाग का जिला है, अनन्तनाग और कष्टवार के मध्यस्थ ११५७० फीट का उत्तुङ्ग–मरबल नामक दर्रा आता है। यहां पर एक नदी प्रवह मान होती है जिसे मरबल कहते हैं। ऋग्वैदिक[2] नदीसूक्त में इस नदी का नाम मरुद्वृधा नाम रहा है। यह मरुद्वृधा उत्तरकुरु के उत्तरीय-दिशा का आंचल गृहण करती है। कश्मीरी भाषा में वैदिक भाषा के ही अनुकूल/बल/ वाचक शब्द प्रवाह के लिए आया है। बलं वै[3] प्रवाहः/, कश्मीरी भाषा में जहां भी /बल/शब्द आंचल-शब्द के साथ आता है वहां पानी का होना नितान्त आवश्यक है जैसे—देवी-बल, हजरत बल, त्राग-बल, यार-बल (विहार-बल) तेल-बल, कोंद-बल आदि। बानिहाल (वनशाला) की इस पर्वत माला का व्यापक नाम प्रवर-पंजाल है क्योंकि पंचाल (पंजाब) की उत्तरीय दिशा में पीर-पंचाल से अधिक कोई भी दूसरा ऊंचा पर्वत नहीं है। इस कारण यह प्रवर-पंचाल[4] पर्वत है। शतपथ ब्राह्मण का मनोरव-सर्पण अथवा नौका-बन्धन या आधुनिक नौबन्दन अभी भी ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह घटना वैवस्तव-मनु के मिथकीय इतिहास से लिपटी है किन्तु घटना के पीछे एक वैज्ञानित एवं व्यापक सत्य है, वह है—कश्मीर का—लौकिक संवत, जिसे सामान्य रूप से सप्तर्षिसंवत् अथवा श्री शुभ संवत् कहते है। इस संवत् की काल अवधि इस समय ५०५२ वर्ष पुरानी है। उसका सामान्य अर्थ यह हुआ कि यह घटना ई० पू० ३०७६ वर्ष पुरानी है। कश्मीर में सप्तर्षि संवत् का प्रयोग आज भी एक हजार[5] वर्ष पूर्व उसी प्रकार प्रयोग होता था जिस प्रकार आज होता है। महा पण्डित कल्हण ने राजतरंगिणी में इसका नाम लौकिक संवत् कहा है और इसी संवत् में सामूहिक राजतरंगिणी की संवत्-व्यवस्था प्रस्तुत की गई है। कश्मीरेतर भारत में इस संवत् का कहीं भी उल्लेख नहीं, केवल विश्व पंचाग आंशिक रूप में इसका संकेत देता है किन्तु कश्मीर की ज्लोतिष पद्धति में इस सप्तर्षि संवत् का प्रभाव महत्वपूर्ण है। ईसा पूर्व ३०७६ वर्ष पुरानी सप्तर्षि संवत् की काल गणना आकस्मिक नहीं हो सकती है। यह काल गणना – मोहन-जो-दारो और हराप्पा सभ्यता के निकटतम ठहरती है। यह काल गणना कश्मीर के नियोलिथिक युग के "बूर्जहोम" सूत्र-संकेत

१. कल्हणः राजतरंगिणी ८/२७६६
२. ऋग्वेद १०/७५/५
३. शतपथः ६/६/२/१४
४. शतपथ : १३/५/४/७ ऐत. ब्रा. ८/१४
५. अभिनवगुप्त : भैरव-स्तोत्र, कल्हणः—राजतरंगिणी, क्षेमेन्द्र—समय-मातृका।

के निकट ठहरती है। इस सप्तर्षि संवत् का आरम्भ चैत्रशुद्धि अथवा चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदि से आरम्भ होता है। कश्मीरी भाषा में इस तिथि को/नवरेह/(नव-वर्ष) कहते है। प्रतिपदि से पूर्व अमावस्या की सन्ध्या को चावलों की थाली भरी जाती है। इस थाली के ऊपर दही, चांदी का रुपया, अखरोट; वय (एक प्रकार की बूटी) और पंचाग (नव वर्ष का) रखा जाता है। यह "लौकिक —कृत्य" मिथक नहीं अपितु किसी चिर-विस्मृत इतिहास की थाती को प्रस्तुत करता है। यह भारतीय ऋग्वैदिक इतिहास की कडी को जोड़ने में एक महत्वपूर्ण सूत्र प्रमाणित हो सकता है—संभवतः अभी तक भारतीय गणमान्य इतिहासकारों ने इस ओर ध्यान देने का श्रम नहीं किया। प्रत्यक्ष और परोक्ष साक्ष्यों के आधार पर, मैं विश्वस्त रूप से यह कह सकता हूं कि कश्मीर के धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्य यहां की कश्मीरी भाषा और अन्यान्य सूत्रों के आधार पर समूचे उत्तरा खण्ड और आर्य आगमन की पहेलियों को सुलझाना सुलभ हो सकता है किन्तु शर्त यह है कि हम दत्तचित होकर कश्मीर को प्रथमतः समझें। विक्रम संवत् के बारे में ऐतिहासिक प्रामाणिकता का अभाव है, शाका संदिग्ध पहेलियों में उलझा है अतः भारतीय संस्कृति में चिरविस्मृत—सप्तर्षि संवत् ही मात्र एक ज्वलन्त साक्ष्य है जो भारतीय इतिहास की कड़ी को तालमेल देने में समर्थशील है। अस्तु, वस्तुतः इस लेख की प्रमुख भूमिका का उद्देश्य यह है कि कश्मीर के आदिम भाषा-भाषी जन कौन थे और भाषा शास्त्र के अन्तर्बहि साक्ष्य कहां तक इसे स्पष्ट कर सकता है।

सर ग्रियर्सन ने १९१५ ई० में भाषा सर्वेक्षण भाग ८ विभाग २ (L. S. I Vol. 8, Part 2) में कश्मीरी भाषा को दरद भाषा क्षेत्र की श्रिण्या विभाषा के साथ वर्गीकृत किया अर्थात् उनके कहने का तात्पर्य है कि कश्मीरी दरद-गोत्रजा भाषा है चूंकि दरद में बहुत विभाषाएं और बोलियां है इस कारण उन्होंने कश्मीरी भाषा के रिश्ते को श्रिण्या विभाषा के चोली-दामन के साथ बांधा—जिसकी दुहाई और ठुकाई भारत के इतिहासकार और भाषा शास्त्री तथ्य को स्वयं कसौटी पर परखे बिना ही अनर्गल रूप से उद्धृत करते आए हैं और संभवतः कर भी रहे हैं और करेंगे भी; किन्तु ग्रियर्सन स्वयं कितनी गहराई में थे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनका वृहत् कार्य भाषा सर्वेक्षण भाग ८ विभाग २ है। इस भाषा सर्वेक्षण के भाग में प्रथमतः उलझी हुई भूमिका है और इसके उपरान्त शब्द-सारिणी प्रस्तुत की गई है और उसके उपरान्त दरद-विभाषाओं के सामान्तर तुलना के २२ वाक्य दिए हैं। वाक्यों के शिल्प को देखकर अनुमानतः यही लगता है कि यह सर ग्रियर्सन का अपना प्रयत्न है क्योंकि सर ग्रियर्सन ने उद्धरण का कोई हवाला नहीं दिया है, किन्तु ग्राम बेली ने अपने "शीणा-व्याकरण" में यही उदाहरण इसी क्रमांक से प्रस्तुत किए है और ईमानदारी से यह हवाला प्रस्तुत किया है कि

ये[1] श्री कामबेल द्वारा चुने हुए वाक्य हैं जिन्हें मैं प्रस्तुत कर रहा हूं।''

वास्तव में सर ग्रियर्सन कश्मीरी भाषा की प्रकृति और प्रवृत्ति को देखकर स्वयं अधिक से ज्यादा उलझे और शंकालु है। तूल और तुक पकड़कर वे महाशय क्या-क्या असंगतियाँ कर बैठे, इस लेख में उन्हें गिनना संभव नहीं है। कश्मीर के उत्तर-पश्चिम भूभाग को साधारणतः दरदिस्तान कहा जाता है। दरद का सामान्य अर्थ संस्कृत में पर्वत है। दरद भू-भाग का उल्लेख महाभारत, पुराण, ग्रीक इतिहासकार एवं कल्हण की राजतरंगिणी में यत्र-तत्र आया है। दरदिस्तान में भाषात्मक सर्वेक्षण के अनुसार प्रमुख तीन विभाषाएं और तेरह विभिन्न बोलियां हैं। प्रमुख तीन विभाषाएं इस प्रकार से हैं। १ काफिरी, २ रवोवार ३ दरद—दरद में श्रिण्या, कश्मीरी और कोहिस्तानी को सम्मिलित किया है। इस प्रकार से ग्रियर्सन ने दरद की इन तीनों विभाषाओं का सपिण्डी संस्कार करके एक विभ्रान्त वर्गीकरण का दावा किया है। शब्दोंके (भाषा शास्त्री शब्दों के) व्यामोह में इस कदर उलझ गए हैं कि वे सोच ही न सके कि भाषा का अन्तः साक्ष्य शब्द नहीं अपितु वाक्य है और श्रिण्या (दरद) कश्मीरी की वाक्य संरचना में आकाश-पाताला का अन्तर है अगर श्रिष्या (दरद) वाक्य उत्तरी-ध्रुव है तो कश्मीरी दक्षिणी-ध्रुव है फिर भी उत्साही भाषा सर्वेक्षक ने दोनों भाषाओं को बांधने का एड़ी-चोटी का प्रयत्न किया। संभवतः कुछ एक उदाहरण देकर यह तथ्य स्पष्ट होगा :—

१. श्रिण्या (दरद)

/बाल हाजेअ हूं/ (बालक हंसता है)

कश्मीरी—शुर छु असान्/ (बच्चा है हंसता)

२. श्रिण्या (दरद)

/बाल से दुत पी हूं/ (बच्चा दूध पीता है)

कश्मीरी—शुर छु दौद चवान्/ (बच्चा है दूध पीता)

भाषात्मक-गठन में दरद विभाषा, हिन्दी-भाषा के निकटतम वाक्य-संरचना का शिल्प ठहराती है अर्थात् प्रथमतः ''कर्ता'', फिर ''कर्म'' उसके उपरान्त ''मुख्य-क्रिया'' और अन्ततः ''सहायक—क्रिया——किन्तु———

कश्मीरी में प्रथमतः ''कर्ता'' फिर ''सहायक—क्रिया'' उसके उपरान्त ''कर्म' और अन्ततः ''मुख्य क्रिया''

संभवतः ग्राफिक-विकास पद्धति से इस उक्त तथ्य का स्पष्टीकरण अधिक सुगम होगा :—

---

1. ग्राम बेली: शीणा व्याकरण, भूमिका १९२४

१. श्रिण्या (दरद) वाक्य प्रवाह :—
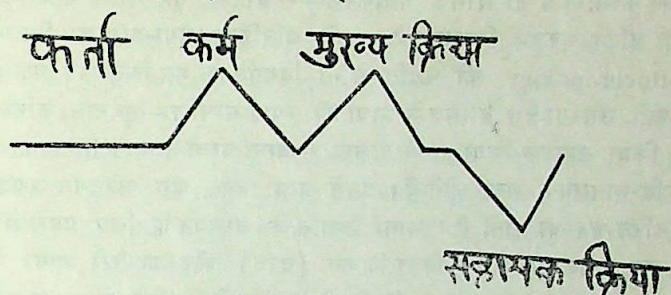
२. कश्मीरी वाक्य प्रवाह :—
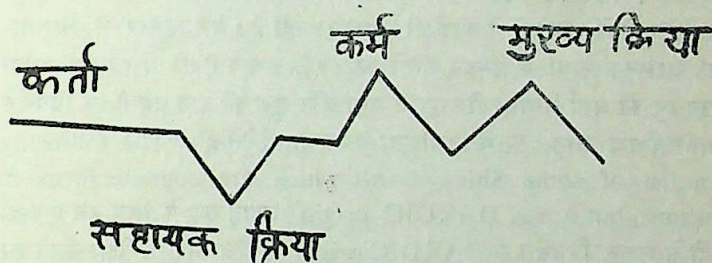
मैंने अपने शोध[1] में सविस्तार एवं सप्रमाण के साथ इस तथ्य को विस्तारित किया है कि भाषात्मक साक्ष्य के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ईरान के सासांनी[2] राजवंश के पतन के पूर्व, अवश्य ही दरदिस्तान का विशेषकर श्रिण्या विभाषा का भाषात्मक सम्बन्ध भारतीय आर्य भाषाओं, विशेषकर मध्य देशीय हिन्दी भाषा के साथ अवश्य रहा है। इस तथ्य के दो सशक्त प्रमाण हमारे पास हैं। प्रथमत: वाक्य संरचना (Construction of the sentences) और सहायक-क्रिया (Auxiliary Verb) है। भाषा विज्ञान के चार प्रमुख समानताओं में वाक्य संरचना का महत्त्व सबसे अधिक वाँछनीय है और आधुनिक विश्लेषित भाषाओं (Analytic Languages) में सहायक-क्रिया (Auxiliary Verb) का होना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य तथ्य है। हिन्दी भाषा की सहायक-क्रिया/है। और श्रिण्या भाषा की सहायक-क्रिया/ हूँ/मैं एक आश्चर्यजनक रूपात्मक साम्य है। यद्यपि ईसा की सातवीं शती के उपरान्त दोनों भाषाओं की भाषात्मक-विकास स्थिति और परिवेश भिन्न-भिन्न रहा है। किन्तु उद्गम का स्रोत अवश्य एक ही है। श्रिण्या (दरद) विभाषा का भाषात्मक विस्तार गिरि-गर्त (गिलगित) से लेकर अस्टोर, द्रास, बोंजी, तिलेल और गुरैय तक फैला है।

---

१. "कश्मीरी भाषा का उद्भव और विकास तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओं से उसका 'सम्बन्ध'।

२. डॉ० ब्रावुन : परशियन लिटरेचर—भाग प्रथम

सर ग्रियर्सन ने इस तथ्य की नितान्त उपेक्षा की है और श्रिण्या (दरद) भाषा को कश्मीरी से जो भ्रामक वर्गीकरण कर बैठा है, वह वास्तव में असंगत ही नहीं अपितु एकदम निराधार है, इसके अतिरिक्त भाषा-काल क्रम विज्ञान (Glottochronology) की पद्धति से भी ग्रियर्सन का मत किसी भी पक्ष में सफल नहीं उतरता है। वास्तव में भाषा की स्थाई सम्पत्ति—सर्वनाम, कारक-प्रत्यय, क्रिया, सहायक-क्रिया, संख्यावाचक, सम्बन्धु: वाची नाम (Kin-names) एवं कृषि-भाषात्मक शब्द होते हैं। इनमें प्राय: वहुत कम परिवर्तन अथवा स्थानाँतरित-अवस्था आती है। भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रमुख अंग ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ हैं किन्तु श्रिण्या (दरद) और कश्मीरी भाषा के तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त कहीं भी कोई उल्लेखनीय साम्य का स्वरूप नहीं मिलता है। अगर सर ग्रियर्सन के दृष्टिकोण से देखा जाए तो समान शब्दों के अतिरिक्त दोनों भाषाओं में कोई भी समानता नहीं है। मेरे विचार से 'मलयालम' आष्ट्रिक भाषा में संस्कृत शब्दों का ७५% प्रभाव है तो 'मलयालम' भाषा के उद्गम को आर्य भाषा स्वीकारा जाएगा और तुक की वात यह है कि ग्रियर्सन भाषा सर्वेक्षण भाग ८/२ में निर्भीकता से यह दुहाई देते हैं[1]—"The following is a list of some Shina words which are cognate forms in Kashmir, but are of DARDIC origin" उदाहरण के लिए हम एक-दो शब्दों से लेकर ग्रियर्सन के DARDIC origin की वैज्ञानिक परीक्षा करने का प्रयत्न करेंगे—

ग्रियर्सन द्वारा प्रदत्त पृ० २५१ भाषा सर्वेक्षण ८/२

	श्रिण्या	कश्मीरी	अर्थ
(क)	शरो	हरुद	(शरत)
(ख)	फतु	पतुं	(पीछे)
(ग)	पोपि	पोफ	(पूफी)
(घ)	मा	मास	(मौसी)
(ङ)	बेंयें	बेंयि	(दुबारा)

(क) वैदिक/शरद्/कश्मीरी भाषा विज्ञान की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार /श/ह/में बदलता है जो श्रिण्या भाषा में यह परिवर्तन कहीं भी नहीं होता है।

(ख) श्रिण्या का/फतु/और कश्मीरी भाषा का/पतुँ/वास्तव में संस्कृत/पश्वात्/का विकृत रूप है।

(ग) श्रिण्या का/पोपि/और कश्मीरी का/पोफ/वास्तव वैदिक/पितृष्वसा/का विकारग्रस्त रूप है प्राकृत में इसका रूप/पिउच्छा।[2]

---

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण (L.S.I. Vol. 8, Part II, Page 251, Para-3.

२. त्रिविक्रम देव ; प्राकृत शब्दानुशासन।

(घ) श्रिण्या का/मा/ और कश्मीरी का/मास/ तथा हिन्दी का मौसी वास्तव में वैदिक शब्द/मातृष्वसा/है, जिसका प्राकृत रूप/मा उच्छा[१]/और इसी से आज का/मास/अथवा/मौसी/रूप उभरा है।

(ङ) श्रिण्या भाषा में/बेयें/का अर्थ हैं दोनों, किन्तु कश्मीरी भाषा में वैदिक शब्द का, वैदिक अर्थ अभी भी सुरक्षित है वैदिक/भूयः/(ओर एक बार) कश्मीरी /बैयि/ (ओर एक बार)

प्रश्न यह उपजता है कि सर ग्रियर्सन की अवधारणा है कि इन शब्दों का मौलिक स्वरूप "क्षीणा" है, संगत नहीं लगता, वास्तव में इनका मौलिक स्रोत वैदिक वाङ्मय और प्राकृतों में अवश्य मिलता है अतः ग्रियर्सन का यह तर्क नींव से अस्थिर दिखाई देता है।

भाषातमक साक्ष्य के आधार पर कश्मीरी भाषा-भाषी जनों का कश्मीर प्रवेश कश्मीर के उत्तर-पश्चिम से न होकर कश्मीर के दक्षिण से हुआ है, विशेषकर उन गोत्रों, व्रात्यों, जन समुदायों का जो इस समय कश्मीरी भाषा-भाषी है। इस तथ्य की सत्यता, भौगोलिक भाषा विज्ञान की आधार-शिला पर अधिक स्पष्ट बैठती है। ऐत्तरेय-ब्राह्मण इस तथ्य को ऐतिहासिक-भूगोल की स्पष्ट व्याख्या करता है। "तस्मादेत स्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तर-कुरुवः उत्तरमद्रा"[२]। श्री मैकडानल[३] अपने "वैदिक इन्डेक्स" के ग्रंथ में उत्तर-मद्र कश्मीर को स्वीकारते हैं। ऐत्तरेय-ब्राह्मण में वसिष्ठ-सात्यहव्य "परेण-हिमवन्त" की सीमा पार भू-भाग को देव क्षेत्र कहते हैं। श्री त्सिमर[४] और श्री बेवर[५] इस साक्ष्य से सहमत हैं कि उत्तर-मद्र के उस पार उत्तर में जिस स्थान का संकेत आया है, वह वास्तव में कश्मीर की ही सुन्दरतम घाटी है।" श्री टेलर[६] स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकारता है कि मनुष्य जाति की जन्म भूमि स्वर्ग तुल्य कश्मीर थीं। बाबू[७] अविनाशचन्द्र दास ने खुले शब्दों में इस तथ्य को स्वीकारा है:—

"That this beautiful mountain country Kashmir and the plains of Saptasindhu were the cradle of the Aryan Roll."

ऋग्वेद[८] के नदी-सूक्त में वितस्ता का नाम आया है और यास्कीय[९] निरुक्त

---

१. त्रिविक्रम देव : प्राकृत शब्दानुशासन।
२. ऐत्तरेय ब्राह्मण ८/१४
३. मैकडनल: वैदिक इण्डेक्स।
४. त्सिमर: अहितद्विशे लेबन—१—१६५
५. बेवर: इन्दिशे—१०१
६. टेलर : ओरिजन ऑफ दि आर्यन्स-९
७. बाबू अविनाशचन्द्र दास : ऋग्वैदिक इण्डिया—५५
८. ऋग्वेद : १०/७५/५
९. यास्क : ९/२६

में पुनः वितस्ता का संकेत आया है। बृहदारण्यक उपनिषद में सुदूर उत्तर भारत का, विशेषतः उत्तर मद्रों को हिमालय उस पार रहने वाला कहा गया है। हिलेब्राण्ट[१] सहर्ष यह स्वीकारते हैं कि कुरुओं और मद्रों की स्थिति कश्मीर में विद्यमान थी। श्री फ्रेंक[२] कश्मीर के संस्कृत योगदान और विकास को देखकर यह स्वीकारने में जरा भी झिझकते नहीं हैं कि कश्मीर ही आर्यों की आदिम क्रीडस्थली रही है। श्री ब्हूलर[३] का कथन है कि कश्मीरी भाषा के चिर विस्मृत धातुओं एवं रूपों को देखकर यह अनुमान भिड़ाना सहज बनता है कि आर्यों का मौलिक आवास कश्मीर ही रहा है।

कश्मीर को कश्मीर के भाषा-भाषी लोग कश्मीर न कहकर मात्र "कशीर" कहते हैं और यहां के नागरिक और एवं भाषा को "केशुर" कहते हैं। मध्यस्थ की / म / ध्वनि लुप्त होती है। इस तुक को पकड़कर ग्रियर्सन ने "Classification of Kashmiri"[४] शीर्षक में इस विकृति को दरद का प्रभाव माना है किन्तु शंका के उत्तर में इतना कहना पर्याप्त है कि भारतीय आर्य भाषा[५] प्राकृतों में /श्म/ अथवा /ष्म/ का परिवर्तन /म्ह, स्म, मा/ में होता है। गढ़वहो प्राकृत-भाषा में /कश्मीर/ का रूप /कहीर/ हुआ है किन्तु कश्मीरी प्राकृत में /श्म/ प्रायः /श्श/ में परिवर्तित होता है और जिस दरद भाषा-विज्ञान की तुक लेकर ग्रियर्सन कश्मीर देश-वाचक शब्द पर थोपना चाहते हैं उस भाषा में /श/ और /म/ का सन्निकर्ष यथास्थित स्वरूप में रहता है जैसे दरद उदाहरण में /शमोनि/ परन्तु कश्मीरी प्राकृत में /श/ और /म/ के सन्निकर्ष में /म/ प्रायः लुप्त होता है यथा:—

वैदिक—/शामूल/ आधुनिक कश्मीरी /शाल/
वैदिक—/शमल/ आधुनिक कश्मीरी /शर/

पाणिनि के पूर्ववर्ती काशकृत्स व्याकरण के आधार पर कश्मीर की मौलिक स्थिति /कशिरदीप्तौ/ धातु पर आरूढ़ है। भारतीय आर्य प्राकृतों में /इ/ ध्वनि /उ/ में परिवर्तित होती है:—

संस्कृत /निपद्यन्ते/ प्राकृत /णुमज्जइ/ (हेमचन्द्र १/१४)
संस्कृत /निपन्त/ प्रा० /णुमण्ण/ (हेमचन्द्र ४/१२३)
संस्कृत /वृश्चिक/ प्रा० /विच्छुय/ (महाराष्ट्री प्राकृत)
संस्कृत /कशिर/ प्रा० /केशुर/ (कश्मीरी प्राकृत)

---

१. हिलेब्राण्ट : वेदिशे माइथोलोजी (मैक्समूलर उद्धृत)
२. फ्रेंक : पाली एण्ड संस्कृत—८८-८९
३. ब्हूलर : टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स टु कश्मीर—८३
४. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८/२, २३३
५. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण-३१२

ऐतिहासिक भाषा शास्त्र की उपेक्षा करके सर ग्रियर्सन, वास्तव में इस तथ्य को अन्त तक पकड़ नहीं पाए कि कश्मीरी भाषा का वर्गीकरण श्रिण्या (दरद) भाषा से सम्भव ही नहीं हो सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्य तो यह है कि कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध उस वैदिक भाषा से है जिस भाषा को ऋग्वैदिक काल के आर्य-जन रोजमर्रा जीवन में बोलते थे। इस सन्दर्भ में **प्रत्यक्ष से परोक्ष पद्धति** (Method) के अन्तर्गत कुछ-एक आधुनिक कश्मीरी वाक्यों को प्रस्तुत करके स्पष्ट समाधान कर सकते हैं—

१. कश्मीरी : करतान्य ओस सु तंति परान् ।
वैदिक : कर्हित:+अन्य आसीत् स: तत्र पठन् ।
हिन्दी : कभी था वह वहां पढ़ता ।

२. कश्मीरी : इह् कथ् ओस प्रेण्य ।
वैदिक : एष कथा आसीत् पौराणिका ।
हिन्दी : यह कथा थी पुरानी ।

३. कश्म० : चै क्युत् थौवुँ मय् इह् पोषु गोन्द ।
वैदिक : त्वत् कृते स्थापितं मया एष पुष्प गुन्द्रम ।
हिन्दी : तुम्हारे लिए रखा मैंने यह पुष्प दस्ता ।

वाक्य-गठन और संरचना को किंचित गहराई से देखने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुंचना जरा भी कठिन नहीं होता है कि कश्मीरी भाषा और यहां के लोगों के बारे में जो व्यापक भ्रम सर ग्रियर्सन ने फैलाया है वह केवल असंगत ही नहीं अपितु ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान की विद्या से निर्मूल है। कश्मीरी भाषा में अब भी वैदिक शब्दों का अनन्त भण्डार विद्यमान है जिसका आंशिक स्वरूप भी नव्य-भारतीय आर्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं होता है। प्रतिभाशील पाणिनि ने जिन सांकालिक धातुओं का विवरण अपनी अष्टाध्यायी में मूल-धातु स्वीकार करके प्रस्तुत किए हैं वे उस समय कश्मीरी भाषा में क्रिया-सम्पन्न और संज्ञा-सम्पन्न भाषिक विकास में आ चुके थे। यथा :—

I क्रिया-सम्पन्न:—[पाणिनी-धातु—अष्टाध्यायी]

१. /अस भुवि/ (होने के प्रति) कश्मीरी /आसुन्/
२. /वुट छेदने/ (काटने के प्रति) कश्मीरी/ वटुन्/
३. /गुद क्रीड़ायाम्/ (खेलने के प्रति) कश्मीरी /गिन्दुन्/
४. /जल दहने/ (जलाने के प्रति) कश्मीरी /ज़ालुन्/
५. /भण कथने/ (कहने के प्रति) कश्मीरी /वंनुन्।
६. /खट्ट संवरणे/ (छिपाने के प्रति) कश्मीरी /खंटुन्।
७. /कृति छेदने/ (काटने के प्रति) कश्मीरी /कतुरुन॑।
८. /थुर्व निर्माणे/ (निर्माण के प्रति) कश्मीरी /थुरुन्/

II संज्ञा सम्पन्न:—[पाणिनि-धातु—अष्टाध्यायी]

१. /वुख-चलने/ (चलने के प्रति) कश्मीरी /वखूंल्य/

२. /हेठ विबाधायाम्/ (बाधा के प्रति)/ कश्मीरी /हेठ/

३. /खष् हिंसायाम्/ (हिंसा के प्रति) कश्मीरी /खश/

४. /चण्ड ताड़ने/ (प्रहार के प्रति) कश्मीरी /चण्ड/

५. /गुर उद्यमने/ (आरम्भ के प्रति) कश्मीरी /गोंड़ु/

कश्मीरी भाषा के विशृंखलित सूत्रों को ढूँढ़ना यद्यपि असम्भव नहीं है किन्तु कठिन अवश्य है क्योंकि भाषात्मक विकास की दिशाएँ इतनी बदल चुकी हैं कि इसके उद्गम एवं मौलिक स्वरूप को खोजना दुष्कर सा बनता है। एक-दो उदाहरण देकर इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है :—

१. संस्कृत /अपराध/, प्राकृत /अवराहो/[1] कश्म० /राह/

२. संस्कृत /शिक्षन्/, प्राकृत /सिख्खन्/[2] कश्म० /हेछुन्/

३. संस्कृत /तरुशिरा/, प्राकृत /तरेसिर/[3] कश्म० /तिहुर/

नील मुनि का नीलमत पुराण और इतिहासकार कल्हण की राजतरंगिणी कश्मीर के प्रागैतिहासिक काल की वैज्ञानिक भूमिका के विषय में मौन हैं। जो भी इतिवृत्त इन्होंने प्रस्तुत किया है वह मिथकीय कथा में संकलित है। अत: इस परिप्रेक्ष्य में दोनों इतिहासकार मौन हैं। किन्तु ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान (Diachronic Linguistic) के सूत्र से हम आदिम कार्यों के विश्वस्त मार्ग एवं पात्र-विकास के आयामों तथा चरणों को सहज-रूप में खोज सकते हैं। लेख के आरम्भ में इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो चुका है कि कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध तथा-कथित श्रिण्या (दरद) भाषा अथवा कश्मीर के उत्तर-पश्चिमी भाषाओं से कुछ भी नहीं है किन्तु कुषाण-युग[4] के समय सारा दरदिस्तान और कश्मीर एक ही अखण्ड साम्राज्य के अंग रहे हैं और यह सारा भू-भाग उस समय बौद्ध-धर्म का प्रशस्त-क्षेत्र समझा जाता था, सम्भवत: उस समय आंशिक रूप से श्रिण्या (दरद) भाषा और कश्मीरी भाषा एक-दूसरे के निकट आकर परस्पर शब्द-राशि से प्रभावित हुई हो किन्तु भाषात्मक-संरचना की सीमाएं अछूती ही रही हैं। इस तथ्य का सबसे बड़ा साक्ष्य कश्मीरी भाषा का वर्तमानकालिक सहायक-क्रिया (Auxiliary-Verb) /छ/ है। /छ/ सहायक-क्रिया भारत के पूर्वोत्तर भू-भाग के अधिक निकट हैं। सहायक-क्रिया /छ/ का विस्तार उड़िया, बंगला, असमी, नैपाली, मैथिली, गढवाली, कुमाऊँनी, और कश्मीरी भाषा में एक समान है। यह भाषा-

१. कालिदास : शाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक।

२. विशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण।

३. विशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण।

४. राहुल सांकृत्यायन : मध्य एशिया का इतिहास—भाग प्रथम

त्मक अन्तः साक्ष्य (Internal Construction) आकस्मिक नहीं है अपितु एक व्यवस्थित भाषात्मक भौगोलिकता का एक विस्तीर्ण परिवेश प्रस्तुत करता है जिसका उल्लेख महत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत है।

भाषा की भौगोलिक प्रामाणिकता के आधार पर तथा ऐत्तरेय-ब्राह्मण के— "परेण हिमवन्त" के साक्ष्य पर, इस बात का तालमेल बिठाना सहज होता है कि आज से सहस्रों वर्ष पहले उत्तर-मद्र की एक आर्य शाखा आधुनिक चम्बा-घाटी के (हिमाचल-प्रदेश) पर्वतीय दुर्गम पग-वीथियों से होते हुए "रामबन" (जम्मू प्रान्त का भू-भाग) के आस-पास आकर विभिन्न टोलियों में बंटकर विभिन्न दिशाओं के तरफ आगे फैलते गए। इनकी ही एक शाखा काष्टवाट (आधुनिक कष्टवार) में आकर आवासित हुई। इन पर्यटक अथवा घुमन्तू लोगों ने प्राकृतिक परिवेश के तथा भौगोलिक वातावरण के अनुसार जिन भू-भागों को अपना जन-पद बनाया उनका नामकरण भी उसी के अनुकूल रखा—"जंगलों की सम्पदा को देखकर आंचल का नाम 'काष्टवाट' रखा।"

भाषात्मक मनोविज्ञान[1] का यह तर्क अकाट्य है कि मनुष्य समाज —व्यक्ति वस्तु और स्थान का नामकरण किए बिना नहीं रह सकता है। यह स्वाभाविक है कि जो कश्मीरी आदिम-जन कष्टवार के भू-भाग में प्रविष्ट हुए हों, इस आंचल की वन्य-प्रकृति को देखकर ही उन्होंने इसका नामकरण इस प्रकार का किया हो। काष्टवार के उत्तर की तरफ आगे बढ़कर कुछ एक टोलियों ने पर्वतीय मार्गों को पार करके कश्मीर-घाटी के दक्षिण में उतर कर अपना आवास बनाया। इस स्थान का नाम उन्होंने "उत्तरसूर्य" रखा क्योंकि उन्होंने उत्तरीय दिशा के छोर पर सूर्य का दर्शन किया। इस कारण स्थानीय नामकरण "उत्तरसूर्य" पड़ा। इन आर्यों की टोली रामवन से होते हुए बानिहाल की ओर आई। बानिहाल के दाद-मूल की प्राकृतिक-भौगोलिकता को देखकर एक स्थान का नाम "देव-गह्वर" रखा जिसे आज "देवगुल" कहते हैं। यहां पर्वतों की अनन्त मालाओं को देखकर समूचे स्थान का नाम "वनशाला"[2] रखा। कश्मीरी-प्राकृत में /व/ध्वनि/ब/ में परिणत होती है और /श/ध्वनि/ह/ में बदलती है अतः आधुनिक /बानिहाल/ वास्तव में 'वनशाला' का ही विकृत स्वरूप है। बानिहाल के उत्तरीय पर्वत-शृंगों को पार करके जब यह आर्यजन बानिहाल के दक्षिणी तलहटी में उतर आए तो स्थान का नाम "कुर-गेंण्डु" रखा। यहां उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये लोग भौगोलिक मनोविज्ञान के महान पारखी अवश्य ही रहे होंगे और प्राकृतिक वातावरण के साथ इनका गहनतम संपर्क रहा होगा। वैदिक भाषा में/कुर/बर्फ को कहते हैं

---

१. Tespersen : Language, its nature, development and origin.

२. कल्हण : राजतरंगिणी तरंग।

और /गेण्डु/सिरहाने का नाम वाचक है। वानिहाल के दक्षिणीय शिखरों से जो भी बर्फ की "एंवलांविस" अथवा दस्सियां खिसककर नीचे आती है, उनकी परतें प्रायः "काज़ीगोण्ड" की तलहटी में जमा होती जाती है। संभवतः बर्फ के इन संघातों अथवा परतों को देखकर ही इन आर्यजनों ने इस स्थान का नाम /कुर-गेण्डु/ (बर्फ का सिरहाना) रखा। कालान्तर में /र/ ध्वनि/ल/ में बदली अतः/कुलगेण्डु/ इस स्थान का नाम रहा। अन्ततः कश्मीरी भाषाशास्त्र के नियम के अनुसार /ल/ध्वनि/ज/ में बदली है:—

१.	वैदिक	=	तुलि	कश्म०	=	तुज	(तीली)
२.	,,	=	मूलि	,,	=	मूँज	(मूली)
३.	,,	=	वलय	,,	=	वेज	(अंगूठी)
४.	,,	=	कुलि	,,	=	कुजि	(पौधा)
५.	,,	=	अंगुलि	,,	=	ओंगुज	(अंगुली)

उक्त नियम के अनुसार /कुलगेण्डु/कुजगोठण्ड/में बदला, अन्त में /ज/ध्वनि सघोष, अल्पप्राण, दन्तमूलीय, एवं स्पर्श-संघर्षी /ज़/ (z) में परिवर्तित हुई। फलतः आधुनिक ध्वनि-उच्चार /कांज़गोठड/ है

इसके उपरान्त कश्मीर के आदिम आर्यजन आधुनिक अनन्तनाग मण्डल (ज़िला) के आसपास फैलकर आवासित हुए। यदि अनन्तनाग (कश्मीर का दक्षिणी ज़िला) मण्डल (District) के सांस्कृतिक-भूगोल (Cultural Geography)का समाज शास्त्रीय अध्ययन गंभीरता से किया जाएगा तो निस्संदेह नृतत्त्व-शास्त्र की संगोपित परतों को उभारने में बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकती है। एक दो तथ्यपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख देना संभवतः श्रेयस्कर होगा और इससे कथन का प्रसंग भी स्पष्ट होगा।

यह निर्विवाद तथ्य है कि आर्यजन उन्मुक्त प्रकृति की आराधना के उपासक रहे हैं, किन्तु इनके दैनिक जीवन में सन्ध्या-वन्दना का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। यह सन्ध्या-वन्दना प्रातः; मध्याह्न और सांय की विशेष उल्लेखनीय है। संध्याकृत्य में सूर्य-कृत्य की उपासना विशेष उल्लेखनीय हुआ करती थी। यदि सांस्कृतिक-भूगोल के आधार पर इसकी व्याख्या की जाए तो अनन्तनाग परगने (पौर-गण) में हमें त्रिःसंध्या, पवन-संध्या और निष्कल-संध्या के शालीन तीर्थों का स्थानीय-नामकरण (Nomenclature) अब भी उपलब्ध होता है। मार्तण्ड का सूर्य-तीर्थ सूर्य-उपासना(का एक विशिष्ठ ऐतिहासिक नाम, अब भी इस कश्मीर भूमिपर, इस सत्य को दोहराता है)कि यह आदिम आर्यों का आदिम उपासना केन्द्र रहा है। इस प्रकार के आदिम उपासना के केन्द्र कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में उपलब्ध नहीं होते हैं। इस तथ्य से यह बात स्पष्ट होती है कि अनन्तनाग ज़िला आर्यों की चिरंतन क्रीडस्थली का प्राथमिक केन्द्र रहा है। भाषात्मक तथ्य के साक्ष्य को नीलमुनि का

नीलमत-पुराण भी पुष्टि कराता है क्योंकि नीलमत-पुराण की सांस्कृतिक-भौगोलिकता नील-नाग(आधुनिक वेरीनाग, बानिहाल तलहटी में अवस्थित)से आरम्भ होती है। कश्मीरी भाषा में हिमनदों (ग्लेशर) से बने चश्मों को नाग कहते हैं। "नगेभव: नाग:" अर्थात पर्वतों के पानी से उपजे हुए। भारतीय[1] सांस्कृतिक इतिहास में "नाग" एक जाति रही है जो मातृ-पक्ष से अनार्य और पितृ-पक्ष से आर्य रहे हैं और पर्वतों पर रहने या अवस्थित होने के कारण इन्हें नाग कहा जाता है। इस पुराण में हमें कश्मीर की चिरंतन थाती का विस्तीर्ण इतिहास एवं संस्कृति उपलब्ध होती है। प्रो० डॉ० वेदकुमारी के अनुसार "नीलमत पुराण" का समय ईसा की सातवीं शती ठहरती है किन्तु नीलमत पुराण में पाणिनि-विश्रृंखलित नियमों को देखकर तथा "रुद्रयामल-तंत्र[1]" की भाषा के साथ तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त नीलमत पुराण का समय ई० पू० तीसरी शती और पांचवीं शती के बीच का समय अधिक स्पष्ट बैठता है।

अगर कश्मीर के आदिम जनों का प्रवेश कश्मीर के उत्तर दिशा की ओर हुआ होता तो सम्भवत: बांडीपुर, सोपुर और बारामूला (वराहमूल) के भू-भाग कश्मीर के आदिम सांस्कृतिक केन्द्र होते। गोत्र-मनोवैज्ञानिकों(Tribal Psychologist) का कथन है कि गोत्र या त्रैइब जब एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बढ़ना आरम्भ करता है उनके आगे जाने की गति तीव्र न होकर बहुत ही धीमी रहती है। प्रथमत: वे पशु-पालन के सहारे नवीन हरियाले भू-भागों का गवेषण करके आगे बढ़ते हैं। इसमें कभी-कभी शतकों का भी समय लगता है क्योंकि प्राचीन काल में जीवन के व्यवसाय का दुर्रा बहुत मन्द रहता। अनन्त नाग जिले में आर्यों को विस्तीर्ण घास के मैदान उपलब्ध तो थे ही पानी की व्यवस्था सर्व सुलभ थी। अत: कृषि-परक जीवन की ओर उन्मुख होना समय की मांग का वांछनीय एवं समाजशात्रीय तथ्य रहा होगा। कृषि-विकास के फलस्वरूप पुन: कृषि-भाषा विज्ञान हमारे सामने उन प्रायोगिक शब्दों को उपस्थित करता है जो कृषि शब्दावली के लिए आवश्यक बनते हैं।

वैदिक=पृथिवी[2],	कश्मीरी=पेथुर	(जमीन)
त्रैदिक=खनि[3],	कश्मीरी=खन	(खोदना)
वैदिक कृषन्त:[4],	कश्मीरी=काह	(जुताई)
वैदिक वदन्त:[5],	कश्मीरी=वेवुन्	(बुवाई)

१. महाभारत : आदि पर्व।
२. ऋग्वेद : १/२२/१३।
३. ऋग्वेद : ७/४६/२।
४. शतपथ : १/६/१३।
५. शतपथ : १/६/१३।

वैदिक=लुनन्तः[1], कश्मीरी=लोंनुन् (कटाई)

इस प्रकार से अनन्त कृषि-परक शब्दावली का विकास होता गया जो प्रकृति में सब ही वैदिक हैं। अनन्तनाग जिले में अब भी इस कृषि शब्दावली का प्रयोग ध्वनि विभिन्नता के उपरान्त भी वैदिक साहित्य के निकटतम है। कालान्तर में कुछ गोत्र भू-सम्पदा के अन्वेषण में धीरे-धीरे कश्मीर के उत्तर की तरफ फैलते गए किन्तु सम्राट अशोक तक आधुनिक श्रीनगर का विकास नहीं हो पाया था और न पौर-अवधारणा का विकास ही हो पाया था। सम्राट अशोक ने प्रथमतः "पौर-अधिष्ठान" (Centre of city state) का सूत्र-पात जेवन ("बिल्हण[2] कवि का जयवन) के नीचे पांतु-छोख (प्रस्तर-शिखर) भू-भाग से लेकर आधुनिक बादामी बाग (वातापी-उद्यान) के मध्यस्थ क्षेत्र में "पौर-अधिष्ठान" (Governing city State) की नींव डाली। सम्भवतः यह मौर्य प्रथा एवं पद्धति का प्रथम प्रशासकीय सूत्र-पात था। लगता है इससे पूर्व ग्रामाणी एवं ग्राम सभाओं के द्वारा शासन की बागडोर का प्रबन्ध रहा होगा। सम्राट अशोक ने आधुनिक "बट्टवोर" के स्थान पर "भट्टारक विहार", आधुनिक 'सोनवोर' के पास, 'स्वर्णविहार' और आधुनिक 'बुछवोर' के पास 'भिक्षु विहार" के तीन विहार स्थापित किए। चीनी यात्रियों के यात्रा प्रसंगों में इन विहारों का ऐतिहासिक प्रसंग अधिक विश्वसनीय एवं तथ्यपूर्ण है। कल्हण तक आते-आते यह ऐतिहासिक पूंजी कब की लुप्त प्राप्य हो चुकी थी।

भू-गर्भ शास्त्र के भौगोलिक सर्वेक्षण संमति के अनुसार तथा प्रत्नविद्या शास्त्रियों की खोज के उपरान्त कश्मीर में पूर्व-पाषाण और नव-पाषाण युगों की समृद्ध सभ्यताओं का पता चला है। पहलगाम (पशुपालक-ग्राम) में प्राप्त पूर्व-पाषाण युग के अवशेष तथा भ्रूर्ज-होम (भ्रूर्जाश्रम) के उत्खनन से प्राप्त सामग्री कश्मीर के इतिहास को ई० पू० ३००० वर्ष प्रामाणित करती है। अभी विश्वस्त खोज और अनुसन्धान की अत्यधिक आवश्यकता है। सम्भव है कश्मीर का इतिहास समूचे उत्तराखण्ड के प्रागैतिहासिक युग के चिर विस्मृत परतों को प्रकाश में लाकर प्रोटो-आर्यों के इतिहास को पुनर्जीवन ही दे बैठे तो कोई आश्चर्य नहीं है।

---

१. शतपथ : १/६/१३।
२. विक्रमाङ्कदेव चरित सर्ग-१८।

कश्मीरी भाषा के विषय में मत-मतान्तर

— बदरीनाथ शास्त्री कल्ला

आज से दो हजार वर्ष पूर्व शहर शाम से यहूदी कश्मीर आ गए। उनकी भाषा इब्रानी थी। उनकी भाषा का प्रभाव कश्मीर पर पड़ गया। यह भी कहा जाता है कि जब उन्होंने कश्मीर को शाम के समान देखा। इसलिए उसका नाम 'कश्मीर' रखा। इसका अर्थ यह है कि 'क' समान और 'शीर' शाम है।

कुछ अंधविश्वासी कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध 'सेमेटिक परिवार' से बताते हैं। उनका कथन है कि कश्मीर के प्रसिद्ध स्थान 'रोज़बल' (खानयार में दसगीर साहिब के पास) हज़रत ईसा की कब्र पाई जाती है जिससे उनके अनुसार इस बात की पुष्टि होती है कि यहूदी कश्मीर में बस गए थे। अत: वे हिब्रू भाषा को ही कश्मीरी भाषा का उद्गम समझते हैं। वे अपनी इस धारणा के पक्ष में निम्न शब्दों का हवाला देते हैं जो कश्मीरी भाषा से मिलते जुलते हैं :—

इब्रानी	**कश्मीरी**	**इब्रानी**	**कश्मीरी**	**इब्रानी**	**कश्मीरी**
अत	यति	लोल	लोल	अल	अल
वन	वन	नहं	न	दह	दूह
हू	हू	नकह:	नख	दम	दम
अज़	अज़	न	v न	दका	दक
तोक	थोक	मालवन	माल्युन	सब	v सबा
तर	तूर	नीर	नियूर	औषध	ओश
मायन	म्वञ्य	कोर	कूर	लाग	लागन

संस्कृत शब्द जो कश्मीरी और इब्रानी दोनों में प्रचलित हैं इस प्रकार हैं—

संस्कृत	**कश्मीरी**	**इब्रानीं**
आलस	आलुस	आसील
स्वांस	शांस	शास
यम	नियम	यइम
यौवन	यावुन	यओन

[कशियुक अलाकवाद फेर, त कोशूर—
v v v
जबान—लेखक:—टाक ज़ैनगीर]

अपने मत का समर्थन करते हुए वे आगे बताते हैं कि कश्मीरियों के उपनाम

जैसे :—मागरे, दांद,परे आदि यहूदी नेताओं के उपनामों के समान हैं। कश्मीर में हिन्दू और मुसलमान दोनों के उपनाम यहूदी उपनामों के समान हैं जैसे— रैणा, किचलू, हापुत, वारिकू, नेहरू आदि। यहां के गांव के नामों के अन्त में 'बल' और 'होम' का प्रयोग यहूदी-बाशन्दों का द्योतक है जैसे :—गान्दरबल, मानसबल, गगरिबल, दुदुरहोम, बुर्जहोम, द्रापुहोम बालहोम आदि हैं।

[Out lines of the Culture of Kashmir by Prof. Hajini.]

आज से दो हजार वर्ष पूर्व कश्मीर में यहूदियों के आगमन से पहले संस्कृत साहित्य में कश्मीर शब्द का प्रयोग अनेक बार आ चुका है। कश्मीर शब्द अति प्राचीन शब्द है। संस्कृत वाङ्मय के प्राचीन महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत में कश्मीर शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से पाया जाता है। जैसे बालमीकीय रामायण में सील के अन्वेषण प्रसंग में इस शब्द का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:—

काश्मीरमडलं सर्वं शमीपीलु वन्ननि च।
पुराणि च सशैलानि विचिन्वन्तु वनौकस: ।।

महाभारत में कश्मीर शब्द का प्रयोग:—

काश्मीरा: सिन्धुसौवीरा: गान्धारा: दर्शकस्तथा।

महाभारत कश्मीर के शासकों तथा इसके भूगोल के विषय में हमें कुछ संकेत देता है। उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों के वर्णन से कश्मीर की स्थिति पर कहीं-कहीं प्रकाश डाला गया है।

महर्षि: पाणिनी (६०० ई० पू०) के व्याकरण के गणों में 'कश्मीर' का उल्लेख मिलता है। व्याकरणान्तर्गत उणादिगण से कश्मीर को कश् धातु के आगे मुट् और ईरट् प्रत्यय लगाने से सिद्ध किया गया है। यही कश्मीर संस्कृत से अपभ्रंश में **कशीर** का रूप धारण कर गया है और इसका निवासी 'काश्मीरिक' से कश्मीरी तथा कोशुर बन गया है। इसकी सिद्धि उणादिगण के गणसूत्र तथा पतंजलि के महाभाष्य से होती है। कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न रूपों में स्पष्ट की है। कश् धातु प्रकाशन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे:—'कशति प्रकाशते विविधविद्या सदाचार-शासन-समृद्धयादिभिरिति-कश्मीर:' अर्थात् विविध प्रकार की विद्या, सदाचार, शासन, समृद्धि आदि पदार्थों को जो प्रकाशित करता है वह कश्मीर कहा जाता है। कुछ विद्वान् 'कश्मलमीरयति'=इति कश्मीर: अर्थात जो पापरूप मलों को दूर करता है वह कश्मीर कहलाया जाता है। आदि।

उपनिषदों तथा पुराणों में भी इसका वर्णन मिलता है। जैसे :—

नमस्ते शारदे देवि **काश्मीर** पुरवासिनि।
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानंच देहि मे ।। (सरस्वती रहस्योपनिषद्)

नीलमत्पुराण और राजतरङ्गिणी में भी इसका प्रयोग हुआ है।

ईसा की कब्र के विषय में जो इन्होंने मत प्रकट किया है, वह स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध नहीं होता है। यदि ईसा की कब्र यहां पाई जाती तो इस कब्र पर शिलालेख अवश्य अंकित होता, किन्तु ऐसा नहीं पाया जाता है हमारे यहां प्राचीनतम जनश्रुतियों पर आधारित किंवदन्तियां आज भी उपलब्ध होती हैं जो कश्मीर को अनेक विषयों से परिचित कराने में सहायक सिद्ध होती हैं परन्तु उपरोक्त तथ्य के विषय में यहाँ कोई किंवदन्ती भी प्रचलित नहीं है।

यहाँ तक कश्मीर के लोग अंग्रेजों के भारत आने पर भी उनके आगमन तथा अस्तित्त्व के विषय में भी अनजाने थे। अब जो यह बताया जाता है कि वह (ईसा) पश्चिम से यहां आकर दफनाये गए थे किन्तु उसके दफनाने वाले कौन थे ? क्या वे आप ही आप दफनाये गए। यदि उनको दफनाने वाला कोई सम्प्रदाय या फिरका या वर्ग था। उसका आसार या अवशेष अब भी मिलता। परन्तु ऐसा मिलता नहीं। अतः यह धारणा निराधार सिद्ध होती है। अपनी सम्मति की पुष्टि में जो शब्द इन्होंने दिए हैं, वे सब आरोपीय परिवार में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :--

संस्कृत	**गोथिक,**	**जर्मन,**	**अंग्लो सैक्सन,**	**अंग्रेजी,**	**पाली,**	**प्राकृत,**	**कश्मीरी,**	**हिन्दी**
सभा	सिब्ज	सिप्प	सिब्ब	गॉड-सिब	सभा	सभाया	सब	सभा
						सहा		
	Sibja	Sippa	Sibb	God-sid, Gossip				

प्राकृत	**संस्कृत**	**ग्रीक**	**गोथिक**	**लैटिन**	**अंग्रेजी**	**कश्मीरी**	**हिन्दी-उर्दू**	**पाली**
अस्सु	अश्रु	दक्रुम	तग्रस्	लकरिमा	टियर	ओश	आँसू	अस्सु

प्राकृत	**संस्कृत**	**लैटिन**	**जन्द**	**पहलवी**	**फारसी**	**कश्मीरी**	**हिन्दी-उर्दू**
धूमओ	धूम	फ्युनुस	दुनमन	दूत	दूद	देह	धुआँ
		Funus					

फारसी	**संस्कृत**	**ग्रीक**	**लैटिन**	**अंग्लो-सेक्सन**	**अंग्रेज़ी**	**गुजराती**	**पंजाबी**	**मराठी**
न	न	ने	ने	न (ne)	नो	न	न	न

संस्कृत	**प्राकृत**	**कश्मीरी**	**हिन्दी-उर्दू**
थुत्कारः	थुक्क	थ्वख	थूक

संस्कृत	**कश्मीरी**	**हिन्दी-उर्दू**	**संस्कृत**	**कश्मीरी**	**हिन्दी**
अत्र	अति	यहाँ	लग्न	लगुन	लगा
लोल	लोल	—	चुम्बन	म्वन्य	चूमना
दश	देह	दस	तुषारः	तूर	तुषार

वैदिक तम दम दम घुटना निकट नख निकट
दम (फारसी)
नील नीर-न्यूर (रलमोरभेदः)

संस्कृत	प्राकृत	कश्मीरी	सिंहली	पाली
अलाबु	अलाउ	अल	लब्बा	अलाबु

संस्कृत	प्राकृत	कश्मीरी	हिन्दी-उर्दू
अद्य	अज्ज	अज़	आज
कुमारी	कुमरी	कूर	कौर (पंजाबी)

तुषार (संस्कृत) तुसार (बंगाली) तुसार (प्राकृत) तुसार (हिन्दी) तुसार (मराठी)
वाणी (संस्कृत) वानी (प्राकृत) वान (गुजराती) वन (कश्मीरी)

संस्कृत	प्राकृत	कश्मीरी	हिन्दी	उड़िया	पंजाबी	पाली
अलसः	अलसः	आलुसन्च	आलसी	अलसुवा	अहलकी	
श्वास	सास	शांश	सांस	सांस	—	सास
यम	जम	यम	यम	—	—	—
यौवन	जोव्वण	यावुन	जोवन	—	—	—

हिन्दी-धक्का, कश्मीरी-दक।

संस्कृत के महल्ल+कः से कश्मीरी नें 'मोल' बन जाता है। इसका प्रथम एकवचन 'माल' है। इसके रूप मोलिस, माल्यन, मोल्यसुन्द आदि बन जाते हैं। इसी 'महल्लः' से कश्मीर में 'माल्युन' बन जाता है। माल्युन का अर्थ हिन्दी में **पिताका** है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है **जैसे** :—

पाली में—महल्लकः, प्राकृत में महल्लः, पोगली में मोल, चिलासी में महालु। ये सब शब्द पिता के अर्थ के द्योतक हैं।

उक्त पक्ष के समर्थन में जो शब्द इब्रानी भाषा के दिखाये गए हैं उन सबों का स्रोत प्रायः संस्कृत है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कश्मीरी भाषा पर फारसी, अरबी, पंजाबी, डोगरी, पहाड़ी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का भी प्रभाव पड़ गया है। इसका अर्थ यह नहीं हो सकता है कि कश्मीरी भाषा का उद्‌गम इब्रानी है या अंग्रेजी आदि। राजनीतिक परिवर्तन के साथ-साथ एक भाषा का प्रभाव किसी न किसी रूप में दूसरी भाषा पर अवश्य पड़ता है। इस प्रक्रिया (Process) को कोई टाल नहीं सकता है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा का विकास आदान-प्रदान में ही पाया जाता है। जैसे अंग्रेजी पर ग्रीक और लैटिन का, उर्दू पर अरबी-फारसी का, भारतीय भाषाओं पर संस्कृत का, इसी तरह अन्य भाषाओं का।

इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि कश्मीर में हिन्दुओं का शासन तेरहवीं शताब्दी तक था। इस लम्बी अवधि में कश्मीरी भाषा पर वैदिक संस्कृत तथा श्रेव्य संस्कृत (Classical Sanskrit) का प्रभाव पड़ता रहा। कश्मीरी भाषा आर्य भाषा परिवार में गिनी जाती है। भाषा शास्त्री इसका सम्बन्ध किसी रूप में हिब्रू से नहीं मानते हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन, टर्नर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इसका सम्बन्ध आर्य भाषा वर्ग से ही मान लिया है। **वस्तुतः** कश्मीरी भाषा संस्कृत से अलग थलग नहीं है। संस्कृत के **तत्सम**[1] तथा **तद्भव**[2] शब्दों को छोड़कर जो अवशिष्ट शब्द कश्मीरी में रहते हैं वे **प्राकृत**[3] अथवा **अपभ्रंश**[4] के द्वारा कश्मीरी में आ गए हैं जो कश्मीरी भाषा के अभिन्न अंग माने जाते हैं। कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने 'महाकाव्य विक्रमाङ्कदेवचरित' में कश्मीरियों द्वारा प्राकृत बोलने का संकेत इस पद्य में किया है:—

"प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृमञ्च ॥"

एक भाषा का दूसरी भाषा के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते समय भाषा शास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट पांच नियमों यानी ध्वनिविज्ञान, शब्दविज्ञान, अर्थविज्ञान रूपविज्ञान तथा वाक्यविज्ञान पर हमें ध्यान देना आवश्यक है। संस्कृत तथा कश्मीरी का तुलनात्मक अध्ययन करते समय हमें ये पाचों नियम नज़र आते हैं जैसे:—

संस्कृत वाक्य	**कश्मीरी वाक्य**
*१. स एकः जन आसीत्।	सु अख ज़ोन ओस।
२. एतु एतु।	हतु हतु।
३. शुष्क घासभारं तत्र मा नय।	होख गास बोर तोतमनि।
	v v
४. तस्मै मा देहि।	तस म दि।
	v
५. चिरं मा कुरु।	चेर म कर॥
	v

इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कश्मीरी भाषा का उद्गम संस्कृत ही है और कोई अनार्य भाषा नहीं।

---

१. संस्कृत के तत्सम शब्द :—मूल, नास्न, क्रूर, मनः, दूर, ताल आदि कश्मीरी में भी ये संस्कृत के समान बोले जाते हैं।

२. संस्कृत के तद्भव शब्द :—घृत से ग्यव, दुग्ध से दुदु (कश्मीरी में)

३. प्राकृत के नच्च् से नच, अज्जः सेअज, ज्ञान से ज़ान आदि

४. अपभ्रंश के कम्म से काम, चुल्लि से चुल, आदि।

* देखो : काश्मीरिक शब्दानां संस्कृत शब्दा एव प्रभवः अखिल भारतीय प्राच्यविद्या परिषद् द्वारा प्रकाशित वर्ष-१९६१ लेखक—बद्रीनाथ शास्त्री।

संस्कृत साहित्य का प्रभाव : प्राचीन काल से संस्कृत भाषा ने हमारे जीवन पर एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल दिया है। यह भाषा चिरकाल तक कश्मीर में प्रचलित थी। इस दीर्घ काल की अवधि में इस भाषा ने जो हमारे मानस पटल पर संस्कार डाल दिये हैं वे शताब्दियों के बाद भी मिटाये नहीं जा सकते हैं। तेरहवीं शताब्दी में हिन्दू राज्य के समाप्त होने पर भी इसने अपनी सत्ता नहीं खोदी। पन्द्रहवीं शताब्दी तक यवन-धर्म दीक्षित नव मुस्लिम भी संस्कृत भाषा को ही देशभाषा के रूप में अध्ययन किया करते थे। यहां बहुत से कुतबे शारदा लिपि में लिखे हुए संस्कृत में पाये जाते हैं जो तत्कालीन मुसलमानों के संस्कृतज्ञान को ही सूचित करते हैं जैसे जैन-उल्लाब्दीन, हसनशाह आदि के। यहां पर यह कहना असंगत न होगा कि प्राचीन काल में संस्कृत नाटकों के अभिनय का प्रयोग भी कश्मीर में होता था जिसके प्रमाण के पक्ष में आज भी हमें 'वाहथोर' तथा 'अकिनगांव' के भाट या भाण्ड प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इनका अपना मण्डप (Stage) था जिसे आजकल भी कश्मीरी में रङ्ग कहते हैं। संस्कृत के रंगभूमि के समान कश्मीर में नाट्यमण्डप को रंग नाम से पुकारा जाता है और 'पात्र' के लिए 'पंथूर' शब्द प्रयुक्त होता था जो आज तक भी ज्यूं का त्यूं है जैसे वाण्ड पंथूर, दर्ज़ पंथूर आदि।
v v

यहां के मुसलमान कवियों तथा लेखकों पर शैव-दर्शन तथा वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है जैसे शमस फकीर, अहमद भहवारी, न्याम सेब आदि।

सामाजिक प्रभाव : कश्मीरी पण्डितों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, अन्ध-विश्वास आदि के प्रभाव से मुसलमान अछूते न रहे। यज्ञ करने वाले को संस्कृत में यजमान कहते हैं उसकी पत्नी को (यजमान की पत्नी) यजमन बाय कहते हैं। इस शब्द के अर्थ विस्तार होने के कारण यह अब अनेक रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। विवाह के समय मुसलमान भी पुत्र के पिता को 'यजमन' कहते हैं और उसकी माता (पुत्र की माता) को यजमनबाय के नाम से पुकारते हैं। विवाह के समय ऐसे मङ्गलगीत उनकी स्त्रियां पढ़ती हैं जिसमें हिन्दुओं की पौराणिक गाथाओं का प्रभाव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है जैसे। :—

इन्दराज़नि दरबार नगमकरान परिस्तानो।
v
सोज़ि मन्सूर वज़ान कन म्य दिचा़व गोस देवानो आदि।।

आजकल भी मुसलमान पुराने कश्मीरी त्यौहारों को पण्डितों के समान ही मनाते हैं जैसे कि धान्य आदि बोने के लिए प्राचीन पंडितों द्वारा निर्धारित तिथियों को ही मान्यता देते हैं और बसन्तोत्सव पर हिन्दू और मुसलमान एक साथ बसन्त के दिनों में 'हारी पर्वत' और अन्य बागों में भ्रमण और सैर-सपाटा समान रूप से

करते हैं। फसल आदि काटने पर बलि पण्डितों की तरह ही केवल मंत्रों से मंत्रित किये बिना दिया करते हैं। इस विषय में वे लोग पण्डितों के समान ही नदियों में नवीन जल के आने के समय खुशियां मनाते हैं।

अभी भी नये घर में प्रथम बार प्रवेश करने के समय 'गृह प्रवेश' का उत्सव ठीक उसी तरह मनाते हैं जिस तरह कश्मीरी पण्डित। अन्तर केवल इतना है कि मंत्रों के स्थान पर अब कुरान के कुछ आयतों का पाठ होता है। इनके कुरान के मंत्रों तथा खतबा आदि की उच्चारण पद्धति ठीक उसी प्रकार से है जिस प्रकार कि यहां के कश्मीरी पण्डित श्लोकों तथा वेदमंत्रों का उच्चारण करते हैं।

इसके अतिरिक्त खानपान आदि का तरीका भी बिलकुल समान है। पहरावे में जो नामकरण फारसी का मिलता है वह तो यवनों के शासन का स्पष्ट प्रभाव है। यवन स्त्रियां भी हिन्दुओं की भांति सिर पर नीरङ्गिका (तरङ्गा) के समान ही कसावा बांधती हैं जो अन्य यवन देशों में प्रचलित नहीं है।

ग्वालिन आजकल भी कश्मीरी पण्डितानियों के समान 'लूंग्य' कमर को बांधती हैं और उनकी वेषभूषा भी कश्मीरी पण्डितानियों के समान होती है। उनका लम्बा परिधान (फ्यरन) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

धार्मिक प्रभाव : कश्मीरी पण्डित जिस तरह मृतकों के उपलक्ष्य में वर्ष भर 'पद्दवार' मासवार तथा वहरवेर आदि नामों से क्रियायें मनाते है उसी तरह मुसलमान भी। कई श्रद्धालु कब्रों पर दिया भी जलाते हैं और फूल भी चढ़ाते हैं। कश्मीरी पण्डित सायंकाल के समय अपने घरों तथा मन्दिरों में दीपक जलाते हैं। मुसलमान भी शाम के समय मस्जिदों में दिया जलाते हैं। संभवत: कश्मीर के बिना यह प्रथा विश्व के किसी कोने में प्रचलित नहीं है।

सिद्ध पुरुषों तथा महर्षियों के उत्सवों पर अर्थात् भट्टमालू, ऋषिमालू आदि के उत्सव मनाने के समय पण्डितों के समान यह मांस खाना निषेध समझते हैं और कई इन दिनों व्रत भी धारण करते हैं। फाल्गुण शुक्ल तैलाष्टमी (तील अंठम) की शाम को बहार के आगमन के उपलक्ष्य में कश्मीरी पण्डितों के बच्चे कांगड़ी आदि जलाते हैं। मुसलमानों के बच्चे भी गांव में उसी महीने में घास आदि को जलाते हैं। यह त्यौहार कश्मीर में 'फ्रोब' के नाम से प्रसिद्ध है जो गर्मियों के आने का द्योतक है।

उक्त प्रमाणों को दृष्टि में रखकर यदि इनके पुरुषों तथा स्त्रियों का नामकरण आज भी संस्कृत में ही पाया जाता है तो कोई अचरज की बात नहीं।

जैसे पुरुषों के नाम :—लसु, स्वन, जन, बाल, जलु, अलभट्ट, स्वनभट्ट, आदि।

v v v v

स्त्रियों के नाम : सुन्दर माल (स्वन्दरमाल) पोशमाल सं॰ (पुष्पमाला) हीमाल, कोसम (कुसम) स्वनद्धद, रूपद्यद जूनमाल (ज्योत्स्नामाला) आदि।

पण्डितों के उपनामों के समान इनके उपनाम आज भी स्पष्ट रूप से मालूम होते हैं जैसे :—ब्रर्य, ऊंठ, गगर, खवड, पञ्ज्य, पण्डित, भट्ट, च्रुंगि, हाख, पाल, मत्य, हण्डि, खेरि आदि।

हिव्रू उपनामों के विषय में इनका मत निराधार सिद्ध होता है। संस्कृत के राजानक से रैणा बन गया है। (मध्यम लोप होने के कारण) राणा हिन्दी में भी बोला जाता है।

संस्कृत के 'श्वापद' से हापुत बन जाता है 'श' का 'ह' होना कश्मीरी में स्वाभाविक ही है।* नेहरू पुराना कश्मीरी शब्द नहीं है। दिल्ली में नहर के किनारे पर रहने के कारण स्वर्गीय श्री जवाहरलाल का नेहरू नाम पड़ गया है। इसका संकेत उन्होंने अपनी पुस्तक में स्वयं दिया है। संस्कृत के 'कच' से किचलू बन गया है संस्कृत में कच को बाल कहते हैं। इसी शब्द से कश्मीरी कचुल बन गया है जैसे बुड कचुल। कचुल का अर्थ 'बालवाला' है। कश्मीर की प्रसिद्ध कवियत्री लल्लेश्वरी ने भी 'कचभार' का प्रयोग अपने वाक्यों में इसी अर्थ में किया है। वारक संस्कृत शब्द है। इसी से 'वारिकू' बन गया है। वारक का अर्थ रुकाने वाला है। पुराने जमाने में यह राजा का बाडीगार्ड (अङ्गरक्षक) होता था। शत्रुओं से बचाने के लिए इसका नाम वारक से वारिक और उसी से वारिकू पड़ गया है संस्कृत के 'पर' से परे बन गया है। बाहर से यवनों के यहां आने के कारण। इनको यहां के निवासियों ने 'परे' कह दिया है। संस्कृत के मार्गेश से 'मागरे' बन गया है। जिस स्थान पर या क्षेत्र में यह पहुंचते थे उसी पर अधिकार जमाते थे। अत: इन्हें मार्गेश कहा जाता था। मार्गेश का वर्ण विपर्यय मागरे है। संस्कृत के 'दान्त' से कश्मीरी में दान्द बन गया है। दान्त का अर्थ संस्कृत में 'पालतू बैल' है।

यह शब्द अन्य भाषाओं में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

जगहों के नाम के पीछे जो 'बल' का प्रयोग हुआ है वह भी संस्कृत का ही है। 'बल' संस्कृत में अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। समूह के अर्थ में भी इसका प्रयोग पाया जाता है। कश्मीरी में समुदाय के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया जाता है। दो-चार आदमी जहां मिल जायें उस स्थान को बल कहते हैं। जैसे यार बल, वुरबल आदि। इसके अतिरिक्त संस्कृत के वल्लि, वल्लरि, वल्लरी, वल्ली शब्दों से भी बल बन गया है। इन सब शब्दों का अर्थ हिन्दी में बेल है। कश्मीरी में 'बल' बन गया है। हिन्दी में यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। जैसे बल पड़ना, बल खाना आदि इसीलिए 'अक्षिबल' का नाम भी 'अच्छबल' पड़ गया

---

* जैसे—दश से देह, पोप से पोह, क्रोश से क्रुह आदि।

है। अदनामक बेलों के होने के कारण इसका ऐसा नामकरण है। मानसबल तथा गान्दरबल ये दोनों संस्कृत शब्द हैं। गंधर्व का अपभ्रंश 'गान्दर' है। गान्दरबल का प्राचीन नाम 'गंधर्व बल' था। इसका वर्णन 'काश्मीरेषु प्रसिद्ध तीर्थ स्थाननि' नामक लेख में भी पाया जाता है।

धाम या आश्रम का अपभ्रंश होम है। संस्कृत के भूर्जाश्रम से बुर्जहोम बन गया है। दर्दुराश्रम से ददुरहोम, बालाश्रम से बालहोम आदि। बालहोम में 'बाला देवी' के नाम पर इसका नाम बालहोम पड़ गया है।

इन उदाहरणों से हमें स्पष्ट मालूम होता है कि यहां की बहुसंख्यक जनता पर सैकड़ों वर्षों के बाद भी आर्यों का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है।

———

संस्कृत साहित्य को कश्मीर की देन

—ले० त्रिभुवन नाथ शास्त्री

यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्म भाषा वदेव ।
प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च ।।

कश्मीर के महाकवि बिल्हण की उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि अतीत में संस्कृत भाषा कश्मीरियों की दैनिक व्यवहार की भाषा रही है। जिसका प्रयोग यहां की स्त्रियां अपनी मातृभाषा के समान किया करती थीं। अतीत में कश्मीर की कीर्ति दिगन्त तक व्याप्त हो चुकी थी। जहाँ भारत के विभिन्न देशों में विभिन्न विषयों की जानकारी रखने वाले विद्वान पाए जाते थे, वहां कश्मीर के विद्वानों में सभी विषयों पर समानाधिकार प्राप्त था। एक समय था जबकि कश्मीर संस्कृत का प्रधान केन्द्र माना जाता था। यह कश्मीर शारदा देश (सरस्वती) के नाम से भी प्रख्यात था। भारत के बड़े-बड़े विद्वान यहां परीक्षा देने आया करते थे। नैषध काव्य प्रणीता महाकवि श्री हर्ष इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। श्री जगद्गुरु शंकराचार्य शक्ति मत का खण्डन करने के लिए कश्मीर आए, पर अन्त में वे देवी के सामने नत मस्तक होकर शक्ति की सत्ता को मान गए। तथा मन्त्र शक्ति से युक्त तन्त्र शास्त्र की आधार भूत "सौन्दर्य लहरी" की रचना करके देवी को प्रसन्न किया। उक्त ग्रन्थ में श्री शंकर ने देवी की अर्चना करते हुए मुक्त कंठ से यह स्वीकारा है कि शिव शक्ति से युक्त है।

'स्पन्द कारिका' के निर्माता वसु गुप्त ईसा की आठवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए हैं। यद्यपि यहां के शैव दर्शन के अनुयायियों का विश्वास है कि शैव दर्शन अनादि है। स्पन्द कारिका में वसु गुप्त ने लिखा है कि परमात्मा, आत्मा तथा सृष्टि तीनों स्वतन्त्र हैं। स्पन्द शास्त्र के अनुसार शिव परम देवता है। शिव ईश्वर का नाम है, पार्वती उस शिव की शक्ति का नाम है। 'स्पन्द' शिव की शक्ति का दूसरा नाम है। इसके उपरान्त प्रत्यभिज्ञा दर्शन रचा गया है। इस दर्शन के प्रमुख लेखक अभिनव गुप्त हैं।

प्रत्यभिज्ञा के अनुसार परम शिव की इच्छा से जगत की उत्पत्ति होती है शिव संपूर्ण जगत में व्याप्त है। सभी जीव प्रत्यभिज्ञा के द्वारा परम शिव का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। परम शिव के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है। अपने को मुक्त करने के लिए जीव को कठिन तपस्या या प्राणायाम आदि

वाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। केवल शिव का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही मुक्ति है।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि कश्मीर के विद्वानों में साहित्य के सभी अंगों पर समानाधिकार प्राप्त था। जहां संस्कृत साहित्य को कश्मीर के विद्वानों की देन स्पन्द शास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन है, वहां यहां के विद्वानों ने साहित्य के अन्य अंगों पर भी अपनी लेखनी उठाई है। यहां के विद्वानों ने काव्य, व्याकरण, छन्द आदि साहित्य के सभी अंगों पर रचनाएं की हैं।

साहित्य में जितने संप्रदाय हैं, उन सभी सम्प्रदायों का उद्‌गम स्थान कश्मीर ही है। जैसे वामन का रीति सम्प्रदाय, आनन्द वर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय, महिम भट्ट का अनुसान मत, क्षेमेन्द्र का औचित्य मत, भामह का अलंकार सम्प्रदाय तथा कुन्तल का वक्रोक्ति मत।

रत्नाकर(८०० ई०):—अमृतभानु के सुपुत्र रत्नाकर कश्मीर के राजा चिप्पट जया पीड के सभा पण्डित थे। इन्होंने 'हर विजय' नामक महाकाव्य की रचना की है। जिसमें शंकर द्वारा किए गये अन्धकासुर के वध का वर्णन है। यह महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है। क्योंकि इसमें काव्य के लालित्य के साथ-साथ अन्य सभी काव्यमय गुण भी पाए जाते हैं। कहा जाता है कि 'मांघ' को नीचा दिखाने के लिए इस महाकाव्य की रचना की गई है। विपुल काय का यह महाकाव्य ५० सर्गों में विभक्त है।

शिवस्वामी (८००ई०):—शिव स्वामी यहां के प्रसिद्ध राजा अवन्ति वर्मा के राज्यकाल में उत्पन्न हुए हैं। इनके पिता का नाम महार्क स्वामी था। अवन्ति वर्मा का काल कश्मीर का स्वर्ण युग माना जाता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'कफिफण म्युदय' है। उक्त महाकाव्य में महात्मा बुद्ध के समकालीन राजा कफिफण का वर्णन है। शिव स्वामी ने बौद्ध धर्म के गुरु चन्द्र मित्र के आदेश से इस महाकाव्य की रचना की है। कोशकार तथा वैयाकरणों ने शिवस्वामी का महत्त्व स्वीकार किया है। आचार्य मम्मट ने अपने सिद्धातों की पुष्टि के लिए शिवस्वामी की रचना से श्लोक उद्‌धृत किये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि शिवस्वामी की कविता उस समय प्रसिद्धि पा चुकी थी।

शिवस्वामी में अलौकिक वाक्पटुता, विलक्षण काव्य तथा विलक्षण वर्णन शक्ति पाई जाती है।

आनन्दवर्धन(८०० ई०):—ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा की सभा के पण्डित थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' है। आलोचक होने के साथ-साथ ये कवि भी थे। इन्होंने देवी शतक, अर्जुन चरित्र आदि काव्यों की भी रचना की है। ध्वन्या लोक नवीन युग की नवीन कृति थी। अतः उसका प्रभाव अन्य ग्रंथकारों पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

(वामन ८०० ई०) :—वामन कश्मीर के राजा जयापीड के मन्त्री थे। ये रीति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। इन्होंने 'काव्यालंकारसूत्र' इस अलंकार ग्रंथ की रचना की है। उक्त ग्रंथ में इन्होंने अलंकार के सभी सिद्धांतों का विवेचन किया है।

उद्भट (६०० ई०) :—ये भी जया पीड की सभा के पण्डित थे। स्वयं ये बड़े धनाड्य थे। इन्होंने 'काव्यालंकार संग्रह' नामक अलंकार का ग्रंथ लिखा है। यद्यपि ये भामह के समान अलंकार संप्रदाय के अनुयायी थे, तथापि कहीं-कही भामह से भिन्नता भी रखते हैं।

विल्हण (१०८५ ई०) :—इनका जन्म 'खोनमुख' ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम जेष्टकलश तथा माता का नाम नागदेवी था। विद्याध्ययन के अनन्तर इन्होंने मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी आदि भारत के प्रान्तों की यात्रा की। अन्त में वे कल्याण के चालुक्य नरेश छटे विक्रमादित्य की राज सभा में पहुंचे। विक्रमादित्य ने इन्हें विद्यापति की उपाधि से विभूषित किया।

इन्होंने 'विक्रमाङ्कदेव चरित्र नामक' महाकाव्य की रचना की है। जिसमें चालुक्य वंशी राजा विक्रमादित्य के चरित्र का वर्णन है। यद्यपि उक्त महाकाव्य ऐतिहासिक है, तथापि इसमें कवित्व मुख्य है, तथा ऐतिहासिक पक्ष गौण है।

कल्हण (११२७ ई०) :—कल्हण के पिता का नाम चम्पक था, जो तत्कालीन राजा विजयसिंह के मन्त्री थे। महाकवि कल्हण कृत राजतरंगिणी संस्कृत साहित्य में एक उच्चकोटि का ऐतिहासिक महाकाव्य है। संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का श्री गणेश कल्हण ने ही किया है। कल्हण ने ११५१ ई० से लेकर कश्मीर नरेशों के शासन चक्र, तत्कालीन राजनैतिक आर्थिक तथा सामाजिक आदि सभी दशाओं का विशद वर्णन किया है। महाकवि ने शिला लेखों, धन श्रुतियों, दानपत्रों, प्रशस्तियों तथा कई हस्त लिखित ग्रंथों के आधार पर अपने ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की है।

कल्हण स्पष्टवादी कलाकार थे, वे किसी के प्रभाव में आने वाले नहीं थे। उन्होंने राजतरंगिणी में अपने आश्रयदाता हर्ष के द्वारा किये गये अत्याचारों को अंकित करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। राजतरंगिणी के पढ़ने से पाठक को ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ काव्यात्मक आनन्द भी प्राप्त होता है। ऐसा आनन्द अन्यत्र मिलना कठिन है।

रूप्यक (११२८-४६ ई०) :—रूप्यक कश्मीर नरेश जयसिंह के सभा पण्डित थे। ये एक प्रसिद्ध आलंकारिक थे। इन्होंने 'अलंकार सर्वस्य' नामक ग्रन्थ की रचना की है। जिसमें अलंकार शास्त्र का विस्तृत वर्णन मिलता है।

मङ्खक (११२६-५० ई०) :—प्रसिद्ध आलंकारिक रूप्यक के शिष्य मङ्खक

यहां के नरेश जयसिंह के सभा पण्डित थे। इनके रचित महाकाव्य का नाम 'श्री कण्ठ चरित' है। उक्त महाकाव्य में भगवान शंकर तथा त्रिपुरासुर के युद्ध का वर्णन है। यह महाकाव्य २५ सर्गों का है। यद्यपि इसकी मूल कथा छोटी है, तथापि कवि ने इसमें जल-क्रीड़ा, संध्या चन्द्रोदय, प्रभात वर्णन आदि जोड़कर इसके कलेवर को बढ़ा दिया है।

आचार्य अभिनव गुप्त (११०० ई०):—ये शैव दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान थे। इनका प्रसिद्ध "ग्रन्थ तन्त्रा लोक" है यह तन्त्र शास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है। इन्होंने प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। इनके 'लोचन ध्वन्या लोक टीका' तथा 'अभिनव भारती' के नाम के टीका ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। 'लोचन ध्वना लोक में ध्वन्या लोक पर विस्तृत टीका लिखी है। तथा अभिनव भारती भरत कृत नाट्य शास्त्र का विशद व्याख्यात्मक ग्रन्थ है।

आचार्य क्षेमराज (११०० ई०):—आचार्य अभिनव गुप्त के शिष्य क्षेमराज ने एक संपन्न ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। क्षेमराज सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इन्होंने संस्कृत साहित्य को अपनी ग्रन्थ राशि से विभूषित कर दिया। ये शैव तथा वैष्णव संप्रदाय के अनुयायी थे। इनकी रचनाएं ये हैं:—

महाभारत मंजरी, रामायण मंजरी, बृहत्कथा मंजरी, दशावतार चरितम्, कला विलास, औचित्य विचार चर्चा, समय मातृका, नीति कल्प तरू।

क्षेमराज को कविहृदय प्राप्त होने के साथ-साथ जगत का पूर्ण अनुभव था। इनकी भाषा सरल तथा बुद्धि ग्राह्य है।

कुन्तल (११०० ई०):—ये वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने 'वक्रोक्ति जीवित, नामक ग्रन्थ की रचना की है। ये ध्वनि के विरोधी आचार्य हैं।

महिम भट्ट (११०० ई०):—ये अनुमान मत के प्रवर्तक थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'व्यक्ति विवेक' है। ये ध्वनि को अनुमान का ही एक प्रकार मानते हैं।

मम्मट (११०० ई०):—मम्मट संस्कृत के निष्णात विद्वान थे। व्याकरण पर इनका पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इन्होंने ध्वनि विरोधी आचार्यों का इस प्रकार से खण्डन किया है कि आगे चलकर किसी को भी ध्वनि का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। संस्कृत साहित्य में अलंकार शास्त्र पर इनकी अद्वितीय रचना "काव्य-प्रकाश" है। काव्य-प्रकाश पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। अतः इसकी टीका करना कठिन समझा जाता है। यद्यपि काव्य-प्रकाश पर विभिन्न विद्वानों द्वारा टीकायें लिखी गई हैं, तथापि यह ग्रन्थ नित्य नवीन ही लगता है।

क्षेमेन्द्र:—इन्होंने 'कवि कण्ठाभरण', 'औचित्य विचार' तथा 'सुवृत्ति तिलक' नामक रचनाएं की हैं। कवि कण्ठाभरण में काव्य के बाह्य साधनों पर प्रकाश

डाला गया है। औचित्य विचार में औचित्य की समीक्षा की गई है। सुवृत्ति तिलक तो छन्द:शास्त्र का मौलिक ग्रन्थ है।

जगद्धर भट्ट (१४०० ई०):—जगद्धर भट्ट भगवान शंकर के अनन्य उपासक थे। 'स्तुति कुसुमांजलि' उनका भक्ति काव्य है। जिसमें भगवान शंकर की स्तुति की गई है। उक्त काव्य में ३८ स्तोत्र तथा १४०० श्लोक हैं। भट्ट की कविता में केवल भक्ति ही नहीं अपितु उसमें अनुप्रास, श्लेष, तथा यमकालंकार का अपूर्व सम्मेलन भी मिलता है। कवि ने शिव के अनुग्रह को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही इस काव्य की रचना की है।

कैयट ने पतंजलि कृत महाभाष्य पर 'प्रदीप' नामक टीका की है। वामन तथा जयादित्य ने पाणिनीय कृत अष्टाध्यायी की टीका (काशिका के नाम से प्रख्यात है) की है। कवि अभिनन्द ने 'रामचरित' तथा 'कादम्बरी कथासार' की रचना की है। सोमदेव रचित 'कथा सरित सागर' तथा उत्पल देव की 'शिवस्तोत्रावली' सर्व विदित ही है।

इसके अतिरिक्त यहां अन्य विद्वानों ने भी सुर-भारती की सेवा की है, पर दुर्भाग्यवश उनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं।

संस्कृत को कश्मीर की क्या देन रही है, यह एक विशद विषय है। जिस पर लेख क्या पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। प्रस्तुत लेख केवल मात्र संक्षिप्त परिचायक है।

कश्मीरी नृत्य और नाटक

—अवतार कृष्ण राजदान

न संयोगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।
सर्वशास्त्राणि शिल्पाणि कर्माणि विविधानि च ।।

—भरत मुनि

(न ऐसा योग है, न कर्म, न शास्त्र, न शिल्प, अथवा अन्य ऐसा कोई कार्य नहीं जिसका नाटक में उपयोग न हो।)

कश्मीरी नृत्य और नाटक की कोई पारम्परिक गाथा नहीं है—ऐसा कई विद्वानों का कहना है। इनके अनुसार कश्मीरी नाट्य-साहित्य का कोई इतिहास नहीं जिससे हमारे नाट्य-कलाकार प्रभावित होते तथा थियेटर को प्रोत्साहन मिलता। परन्तु जहां तक कश्मीर के इतिहास का सम्बन्ध है, यहां समय-समय पर कई ऐसे अभिनेता, तारिकाएं एवं कला-निदेशक हुए हैं जो अपनी-अपनी कला में सिद्धहस्त थे। नीलमत पुराण में वर्णित है कि यहां वर्ष में तीन बार नृत्य और नाटक का प्रदर्शन किया जाता था। एक उस समय जब कोई धार्मिक उत्सव हो। इस दिन भगवान की विभिन्न लीलाओं का प्रदर्शन नृत्य और नाटक द्वारा किया जाता था। दूसरा उस समय, जब कोई सामाजिक उत्सव हो, जैसे शादी-ब्याह आदि। तीसरा उस समय जब कोई कृषि-सम्बन्धी उत्सव हो—जैसे बीज बोना या फसल काटना। इन सभी अवसरों पर यहां खासी चहल-पहल रहती थी तथा नाटक खेलने या नृत्य-प्रदर्शन में जो कलाकार भाग लेते थे, उनकी कला का कमाल देखते ही बनता था। कल्हण ने राजतरंगिणी में कश्मीरी नृत्य और नाटक का बार-बार उल्लेख किया है। इनके अनुसार यहां नृत्य और नाटक का प्रदर्शन प्रायः मन्दिरों में किया जाता था। महाराजा जलूक के राजत्वकाल में एक सौ से अधिक नृत्यांगनायें ज्येष्ठेश्वर मन्दिर में स्थायी तौर पर रहकर नृत्य-प्रदर्शन करती थीं। यहां के सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि बिल्हण ने अपनी काव्यकृति 'विक्रमांकदेवचरितम्' में कश्मीरी नृत्य और नाटक का वर्णन करते हुए लिखा है कि कश्मीरी नृत्यांगनायें अपनी कुशल नृत्यकला और अभिनय के कारण संसार-प्रसिद्ध थीं। इनकी नृत्य-कला की तुलना रम्भा, चित्रलेखा तथा उर्वशी जैसी अप्सराओं की नृत्य-शैली से हो सकती थी। इसी प्रकार दामोदर गुप्त ने 'कुट्टनिमत-काव्य' में यहां बहुत-सी थियेटर-कंपनियां होने का उल्लेख किया है। और अन्त में, यहां के सुप्रसिद्ध संस्कृत

लेखक वसुगुप्त ने अपने दार्शनिक सूत्रों में कश्मीरी नृत्य-शैली का सविस्तार वर्णन किया है। अपने इन सूत्रों में इन्होंने नृत्यांगना की आत्मा से, रंगमंच की अन्तरात्मा से, तथा प्रेक्षकों की इन्द्रियों से तुलना की है। इन सभी तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि कश्मीर में नृत्य और नाटक की परम्परा प्राचीन है। यहां समय-समय पर कई अभिनेता, नृत्यांगनायें, निर्देशक एवं नाटककार हुए हैं जिनकी यश-कीर्ति की किरणें सारे भारत में फैली हुई थीं। जहां तक स्थानीय नाटककारों का संबंध है, कहा जाता है कि संस्कृत नाटक लिखने का समारम्भ इन्होंने ही किया। यहां के नाटककारों ने कई अमूल्य संस्कृत नाटकों की रचना की जो कश्मीर के बाहर भी अभिनीत हुए तथा पाठक एवं प्रेक्षक इनके कथानक, कथोपकथन आदि नाटकीय तत्त्वों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कई विद्वानों ने इन नाटककारों में कालिदास की गणना भी की है। सजीव इतिहासकार पं० पृथ्वीनाथ कौल बामज़ाई के अनुसार कश्मीर के प्रथम उच्चकोटि के संस्कृत नाटककार का नाम चंडिका था। यद्यपि आजकल इनकी कोई विशेष कृति उपलब्ध नहीं है, फिर भी कहा जाता है कि यह वही चंडिका है जिसकी प्रशंसा में वल्लभदेव ने अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति 'सुभाषितावली' में कुछ पद लिखे हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी में एक और संस्कृत नाटक का उल्लेख किया है जिसका शीर्षक है 'रामाभयुद्ध'। इसके रचयिता का नाम यशोवर्मन कहा जाता है। कहा जाता है कि यह नाटक कश्मीरी रंगमंच पर कई बार अभिनीत हुआ। इसका उल्लेख आनन्दवर्मन ने 'ध्वन्यालोक' में भी किया है। इसी प्रकार के कई नाटक कश्मीरी रंगमंच पर समय समय पर खेले गए जो काफी लोकप्रिय हुए। यही कारण है कि चौथी शती से सातवीं शती तक के अन्तराल में यहां के प्रत्येक गांव में एक रंगमंच था जिस पर प्रतिदिन ग्रामवासियों के मनोरंजनार्थ नाटक खेले जाते थे। यही वह समय था जब यहां के प्रत्येक सम्प्रदाय का अपना अलग नृत्य-दल एवं वादक-दल होता था। यहां के हर एक मन्दिर या देव-स्थान के अपने-अपने गायक, वादक तथा भगवान की विभिन्न लीलाओं का अभिनय द्वारा प्रदर्शन के लिए अभिनेता, तारिकायें एवं सूत्रधार होते थे।

स्वर्ण-युग में नृत्य और नाटक

कश्मीर के प्रतापी राजा ललितादित्य का राज्यकाल कश्मीर के इतिहास का स्वर्ण-काल माना जाता है। यही वह समय था जब कश्मीरी ललित कलाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ तथा संगीतकारों एवं नृत्यांगनाओं को अपनी कला के प्रदर्शन करने का प्रोत्साहन मिला। इन्द्रप्रभा इसी काल की एक तारिका हुई है जिसको महाराजा ने अपने दरबार में आश्रय दे दिया था। कल्हण ने राजतरंगिणी में इस तारिका का उल्लेख बार-बार किया है। उस समय प्रेक्षक इसकी नृत्य-कला से इतने प्रभावित हुए थे कि वे इसको स्वर्गपुरी से इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सरा

कहते थे। इतना ही नहीं, इसी कालावधि में नृत्य करने और नाटक खेलने का इतना प्रचलन रहा कि लोगों ने इसको व्यवसाय के तौर पर अपना लिया था जो राजतरंगिणी में वर्णित कथा से भी प्रमाणित होती है—एक बार जब ललितादित्य वन में शिकार खेलने जा रहे थे तो दूर से इन्होंने दो कुंवारी लड़कियों को देखा। इनमें से पहली लड़की कलात्मक ढंग से नृत्य का प्राभ्यास कर रही थी तथा दूसरी उसके साथ-साथ ढोल और मंझीरे बजा रही थी। महाराजा ललितादित्य ने जब पास जाकर उनसे पूछा कि तुम किस उद्देश्य से अपनी इस कला का प्रदर्शन कर रही हो तो उत्तर में वे झट बोलीं—"हम एक व्यावसायिक नृत्य एवं संगीत-मण्डली से संबन्ध रखती हैं। नृत्य-कला के विकास के लिये हमारे पूर्वजों ने जो योगदान किया है, हम उनकी इस कड़ी को जीवित रखना चाहती है।" बाद में कहा जाता है कि महाराजा ने यहां पर एक भव्य शिव-मन्दिर का निर्माण किया था जहां प्रतिदिन संध्या-समय सुप्रसिद्ध नृत्यांगनाएं प्रेक्षकों के सामने नृत्यकला का प्रदर्शन किया करती थीं। प्रेक्षकों में महाराजा भी सम्मिलित होते थे। कारकोट वंश के बाद उत्पल-वंशीय राजाओं ने यहां नृत्य और नाटक के विकास लिए उल्लेखनीय कार्य किया। इनकी शासनावधि में नृत्य और नाटक राज-दरबारों एवं मन्दिरों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इनका प्रदर्शन यहां के प्रत्येक स्थान पर स्वतन्त्र रूप से होता रहा। नृत्य और अभिनय में उच्च-जातीय लड़कियों के साथ-साथ मध्यम और निम्न वर्ग की लड़कियां भी भाग लेती रहीं। कई राजाओं ने इन नृत्यांगनाओं को अपनी महारानी भी बनाया था। राजतरंगिणी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्राप्त होता है। कहा जाता है कि उत्पल-वंशीय राजा चक्रवर्मन ने तत्कालीन दो नृत्यांगनाओं हंसा और नागलता के साथ शादी की थी जिन्होंने नृत्य के साथ-साथ अभिनय में भी प्रसिद्धि पाई थी। इसी प्रकार प्रतापादित्य—२ एक ऐसी नृत्यांगना के प्रेम में फंस गये थे जो एक व्यापारी की पत्नी थी। एक दिन जब वह मन्दिर में प्रेक्षकों को अपने नृत्य से रिझा रही थी तो राजा उस पर मुग्ध हुए और उसको तत्काल ग्रहण कर लिया। बाद में वह महाराजा की रानी बनकर उनके दरबार में मौजूद अन्य नृत्यांगनाओं के साथ नृत्य और अभिनय के विकास में लगी। यहां के नृत्य और नाटक के अन्य अनेक उदाहरण हमें इतिहास के कई सूत्रों से प्राप्त होते हैं जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कश्मीर-मण्डल प्राचीनकाल से ही विद्या-बुद्धि के साथ-साथ ललित कलाओंका प्रमुख केन्द्र रहा है; खासकर नाटकों के संबन्ध में हमें पूरी तरह सहमत होना चाहिए कि यहां न केवल संस्कृत नाटकों की रचना ही हुई बल्कि कश्मीरी में भी कई नाटक लिखे गये जो अब काल कवलित हो गये हैं। इसका यही कारण है कि गत कई शतियों से यहाँ ऐसी कई परिस्थितियां पैदा हो गईं जिनके परिणाम-स्वरूप न सिर्फ कश्मीरी साहित्य ही काल-कवलित हो गया, बल्कि यहां की ललित-

कलाओं के विकास में भी कई अड़चनें पैदा हो गईं। इनमें से सर्वाधिक घातक प्रभाव कश्मीरी नृत्य और नाटक पर पड़ा और रंगमंच का दीपक बुझना शुरू हो गया। इसके साथ ही कश्मीर में मुसलमानों के आगमान से रही-सही कसर पूरी हो गई, क्योंकि मुसलमान धार्मिक दृष्टि से ललितकलाओं के घोर विरोधी थे। इन्होंने कश्मीर में नृत्य और नाटक पर प्रतिबन्ध लगा दिये। तत्संबन्धित साहित्य को या तो जला दिया या वितस्ता में बहा दिया जिसके परिणामस्वरूप कश्मीरी रंगमंच के इतिहास में नृत्य और नाटक का इतिहास धूमिल हो गया।

बड़शाह के शासनकाल में नृत्य और नाटक

कश्मीर में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लगभग डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् अर्थात् सुलतान ज़ैन-उल-आब्दीन बड़शाह के राजत्वकाल में कश्मीरी ललितकलाओं के विकास एवं समृद्धि के पृष्ठ एक बार फिर जोड़ दिये गये तथा कश्मीरी रंगमंच और नाट्य-साहित्य एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ। इस समय यहां सुलतान के प्रोत्साहन पर कई अभिनेता और तारिताएं रंगमंच पर उतर आईं तथा अपनी कला का प्रदर्शन करने लगीं। इनमें वे कलाकार भी शामिल थे जो बड़शाह के पिता सुलतान सिकन्दर 'बुनशिकन' के नृशंस अत्याचार से तंग आकर यहां से बाहर चले गये थे। 'बड़शाह' स्वयं भी नृत्य देखने तथा नाटक खेलने में रुचि लेते थे तथा इन्हीं के सफल प्रयासों से कश्मीरी रंगमंच उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। रंगमंच को उस समय लोग चहुंमुखी देवता (Four Faced God) कहते थे।

इसके शाही दरबार में कई तारिकाएं मौजूद थीं। जिनमें तारा, रत्नमाल, दीपमाल और नृपमाल के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी तारिकाएं सज-संवर कर अप्सराओं के समान लगती थीं। तारा नृत्यकी ४६ भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन करना जानती थी। बड़शाह के शासनकाल में हुई रंगमंचीय गतिविधियों के सम्बन्ध में श्रीवर 'जैन-राजतरंगिणी' में इस प्रकार लिखते हैं—"प्रेक्षक तथा गायक साहित्य और दर्शन में ख़ासी दिलचस्पी लेते थे। ये यहां की ललितकलाओं के कद्रदान थे। संगीत में रुचि रखने वाली कई युवतियां पूरे सुर-ताल के साथ कई भाव-प्रवण गीत गाकर दरबार की शोभा बढ़ाती थीं। इनके साथ प्राय: पुरुष भी भाग लेते थे। ये अभिनय में भी रुचि लेते थे और कभी-कभी अपनी इस सुरुचि को जगाने के लिये ये स्टेज पर भी अभिनय करते थे। रंगमंच मानो एक सुन्दर बाग की तरह होता था। इस पर पंक्ति में दीपक जलाये जाते थे इसके आसपास प्रेक्षक मद्यपान में ऐसे मस्त रहते जैसे मधुकर रंगारंग फूलों का रस लूटने में मस्त रहते हैं। राजा के आसपास चमकते हुए दीपको को देखकर ऐसा लगता था कि स्वर्गपुरी के सारे देवी-देवता राजा की कुशल शासन-प्रणाली से प्रभावित होकर पृथ्वी पर अवतरित हो गये हैं। जो प्रेक्षक नाटक को दूर से देखते, वे सदा इस भ्रम

में रहते कि क्या ये दीपक जल रहे हैं या पुराने राजाओं की आत्माएं सुलतान के दर्शनार्थ यहां इकट्ठी हो गई हैं। प्रेक्षकों में राजा तो इन्द्र के समान लगते थे। इनके पीछे कई विद्वान् और दार्शनिक आदि बैठे रहते थे। इनके दायें-बायें योगी, साधु तथा वे पुरुष होते थे जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की हो। रंगमंच पर नृत्य करती तारिकाएं अप्सराओं के समान लगती थीं तथा प्रेक्षकों को इसकी कला का आभास उस समय होता था जब वे मंच पर विभिन्न भाव-भंगिमाओं का प्रदर्शन किया करती थीं।"

बड़शाह के शाही दरबार में संस्कृत एवं कश्मीरी के कई नाटककार हर समय मौजूद रहते थे जिनमें बोधिभट्ट और अथसोम (सोम-पंडित) के नाम उल्लेखनीय है। बोधिभट्ट ने बड़शाह के यशोगान में 'जैन-विलास' शीर्षक से उच्चकोटि का एक कश्मीरी नाटक लिखा जो इनके देहावसान के बाद कई बार अभिनीत हुआ। इस नाटक के सम्बन्ध में श्रीवर का कहना है—"बोधिभट्ट कश्मीरी भाषा के एक उच्च-कोटि के लेखक थे। इन्होंने दर्पण की तरह स्वच्छ एक कश्मीरी नाटक लिखा जिसका शीर्षक था 'जैन-प्रकाश'। इसमें इन्होंने बड़शाह के यशोगान का वर्णन किया है।"

"कश्मीरी ललितकलाएं, उद्भव और विकास" से साभार।

———

बिल्हणः एक अध्ययन

—काशीनाथ दर

प्रातः स्मरणीय कश्यप की तपोभूमि कश्मीर पर वीणावादिनी सरस्वती की भी विशेष कृपा रही है। प्रकृति ने जहां इस पर्वत-कन्या की लीलास्थली का दिल खोलकर श्रृंगार किया वहां इसके सहृदय निवासियों ने अपने मन का उबाल संस्कृत के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करके इसकी रसात्मक अनुभूति का प्रणयन किया। ईसा पश्चात् नौवीं से बारहवीं शताब्दी तक कश्मीर के साहित्याकाश पर कई तेजवान नक्षत्र उग आये जिन्होंने अपनी रससिद्ध रचनाओं से 'मां भारती' का नाम उज्ज्वल किया। सम्भवतः यह चार सौ वर्ष कश्मीर में संस्कृत-सम्बन्धी मौलिक तथा सृजनात्मक उद्योगों की पराकाष्ठा या परिणति कहलायेगा। इस युग के मनीषियों ने देववाणी की समृद्धता में कई अध्याय जोड़ दिए और इसके पन्नों पर इस भाषा की महक सुरक्षित रखी। कश्मीर का प्राचीन नाम 'शारदा देश' तो यथार्थ ही प्रमाणित हुआ।

जैसे कि कई बार आग्रह किया गया है कि संस्कृत केवल शिष्ट-समुदाय की भाषा थी और इसे जन-भाषा की पदवी कभी प्राप्त न थी, यह मत कश्मीर के इस अपूर्व साहित्य-भण्डार को देखकर निर्मूल प्रतीत होता है।

यदि ऐसा होता तो कश्मीर के साहित्यकार अपनी रचनाओं का माध्यम संस्कृत ही क्यों चुनते; उन्हें कौन समझ पाता? उनका सम्पूर्ण साहित्य पढ़ने वालों के अभाव में निरुद्देश्य बन जाता। संस्कृत जैसी भाषा का चयन करके वे सहृदय समाज की धड़कनें पहचान पाए थे। उन्हें विश्वास था कि संस्कृत जैसी भाषा ही जन-जीवन के हर एक स्तर को आन्दोलित फलतः प्रभावित करने की क्षमता रखती है। बिल्हण के ये शब्द इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं:—

"यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव,
प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च।"[1]

इस साक्षी की पुष्टि में 'स्टाइन' यह कहते हैं, "मुसलमानों में भी संस्कृत का निर्बाध तथा निरन्तर प्रयोग श्रीनगर में बहाउ-दीन साहिब के मज़ार में स्थित

१. विक्रमाङ्कदेवचरितम् XVIII, 6.

एक कबर के संस्कृत में उत्कीर्ण लेख से सिद्ध होता है (ईसा पश्चात् १४८४)।"[1] अतः यह अनुमान करना कि संस्कृत जन-भाषा के रूप में अपनी महत्ता खो चुकी थी, नितान्त भ्रमपूर्ण है। आगे चलकर यह प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेता यह तथ्य लिपिबद्ध करते हैं—"मैंने श्रीनगर, मार्तण्ड के समीप और इधर-उधर मुसलमानों की बहुत पुरानी कबरों पर संस्कृत में संक्षिप्त शिलालेख पाए हैं।"[2] इस तरह बाह्य तथा आन्तरिक साक्षी के आधार पर हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि कश्मीर में संस्कृत का प्रयोग जन-भाषा के रूप में सर्वथा विद्यमान था।

इसी सांस्कृतिक नवचेतना के स्वर्णयुग में जब संस्कृत न केवल विद्वानों के लिए मस्तिष्क के व्यायाम को सामग्री जुटा देती थी, अपितु साधारण जनता के मौखिक आदान-प्रदान की भी वाहन थी, बिल्हण के शिशु शरीर ने संसार में आंखें खोलीं। उसके जन्म से पूर्व ही वह परिवेश तैयार हो चुका था जिस पर सौभाग्य ने बिल्हण को अपनी कल्पना का रंग चढ़ाने को भेजा था। यह पृष्ठ-भूमि सोने में तोले जाने के योग्य थी, इसके संस्कार उसके लहू में इतने हिल-मिल गए थे कि परदेस में भी रहकर उसे स्वदेश की मीठी याद बराबर गुदगुदाती रही।

कल्हण की राजतरंगिणी में बिल्हण का प्रथम उल्लेख आया है :—

"कश्मीरेभ्यो विनिर्यान्तं राज्ये कलशभूपतेः।
विद्यापतिं यं कर्णाटश्चक्रे पर्माडि-भूपतिः॥
प्रसर्पतः करीटिभिः कर्णाटककान्तरे।
राज्ञोग्रे ददृशे तुगं यस्यैवातपवारणम्॥
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकवि-बान्धवम्।
बिल्हणो वचनां मेने विभूतिं तावतीमपि॥"[3]

बिल्हण के कुछ श्लोक मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' और काव्यतन्त्र की 'बालबोधिनीवृत्ति' में भी मिलते हैं। कुछ सुभाषितावलिओं में उनके नाम से दिए गए उपदेशात्मक श्लोक भी पाए जाते हैं। इससे यह बात साफ हो जाती है कि बिल्हण यद्यपि कश्मीर से बहुत दूर था, फिर भी यहां की रसिक जनता में इसकी लोकप्रियता बनी रही।

इस 'कश्मीरी कवियों में रत्न'[4] बिल्हण को प्रकाश में लाने का श्रेय वास्तव में डा० बूहलर को है। विधि की विडम्बना से यह सुकार्य भी कश्मीर से बाहर ही सम्पन्न हुआ। संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में जब डा० महोदय जैसलमेर में थे तो उन्हें वहां 'विक्रमांकदेवचरितम्', की एक पुरानी प्रति नारियल-पत्तों

---

१. Rajatarangini, English Translation, Introduction.
२. Ibid.
३. राजतरंगिनी VII 935—37.
४. A. B. Keith, History of Classical Skt. Literature.

पर लिखी हुई मिली। बिल्हण को प्रकाश में लाने के सम्बन्ध में यह घटना प्रथम मील-पत्थर कहलायेगी। राजतरंगिणी के कलकत्ता संस्करण में बिल्हण के स्थान पर रिल्हण लिखा गया है।[१] परन्तु प्रवीण डाक्टर महोदय ने इस रिल्हण को बिना किसी संकोच के 'बिल्हण' ही समझा। उनका अनुमान परवर्ती खोज के आधार पर सच निकला। शारदा लिपि में 'र' और 'ब' के देखने में समान चिन्हों में गड़बड़ होना स्वाभाविक है; इसलिए जब लिपिकार ने शारदा अक्षरों में लिखी गई 'तरंगिणि' का देवनागरी अक्षरों में रुपान्तर किया तो उसे स्पष्ट कारणों से अनजाने में यह भ्रम हो गया होगा और 'ब' के बदले उसने 'र' लिखने की त्रुटि की होगी। डा० स्टाइन के संशोधित संस्करण में बिल्हण ठीक तौर से लिखा गया है।

प्रतीत होता है कि 'बिल्हण' शब्द संस्कृत-मूलक नहीं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इसका मूल 'दर्द' भाषा में मिले और इस शब्द का उस बोली में कोई अर्थ रहा हो। इस सम्बन्ध में अधिक गवेषणा वांछनीय होगी। ऐसी ही बात कल्हण के विषय में भी कही जा सकती है, जिसे कई पाश्चात्य आलोचकों ने 'कल्याण' का विकृत रूप समझा है; इस 'कल्हण' का उल्लेख मंख के 'श्रीकण्ठ चरितम्' में मिलता है।[२] परन्तु ऐसा अनुमान निर्मूल है क्योंकि स्पष्ट है कि कुछ नामों को छोड़कर कश्मीरी साहित्यकारों ने संस्कृत की अपेक्षा अपनी मातृ-भाषा के उस समय के रूप में से अपने नाम चुनने अधिक श्रेयस्कर समझे, उदाहरणार्थ मम्मट और अन्य टकरान्त नाम जिनका प्रचलन कश्मीर में बहुत रहा।

बिल्हण अपने जन्मस्थान के विषय में मौन नहीं। अन्य संस्कृत कवि अपने परिचय की ओर उदासीन हैं; यही मूल कारण है कि उनका जीवनवृत्त धुंधलके में छिपा रहता है जिसके फलस्वरूप समीक्षक उनके सम्बन्ध में विश्वास से कुछ नहीं कह सकते। हमारा कवि इसका अपवाद है। वह आत्मवृत्त के प्रति जागरूक है। "वह घास के ढेर की ओट में रहना नहीं चाहता।"[३] जिस गांव में उसका जन्म हुआ, उसके सम्बन्ध में वह यह लिखता है :—

"तस्मादस्ति प्रवरपुरतः सार्धगव्यूतिमात्रां
भूमिं त्यक्त्वा जयवनमिति स्थानमुत्तुंगचैत्यम्।
कुण्डं यस्मिन्नमलसलिलं तक्षकस्याभिहर्त्तु-
र्धर्मध्वंसोद्यतकलिशिरच्छेदचक्रत्वमेति ॥
यस्यास्ति 'खोनमुखं' इत्युपकण्ठसीम्नि।
ग्रामः समग्रगुणसंपदवाप्तकीर्तिः ॥[४]

१. Rajatarangini VII 937.
२. Dr. Keith and others.
३. Dr. Buhler, Kashmir Report.
४. विक्रमाङ्कदेवचरितम् XVIII, 70-71

यह 'खोनमुख' ग्राम आज भी प्रवरपुर [श्रीनगर] से इतनी दूरी पर स्थित है जितनी हमारे कवि ने लगभग ८०० वर्ष पूर्व बताई है। इन ढाई कोसों पर भूगोलिक परिवर्तनों ने कोई परिवर्तन करने का दुस्साहस नहीं किया है।

यह 'खोनमुख', 'पुरन्दर-अधिष्ठान' (कश्मीरी पांदरेठन) से बायीं ओर लगभग दो मील पर स्थित है। 'पुरन्दर-अधिष्ठान' श्रीनगर-जम्मू राजपथ पर पांचवें मील पर बसा है, यहां से एक सड़क बायीं ओर को 'ज्वालामुखी तीर्थ' तक जाती है, इसी सड़क पर बिल्हण का जन्मग्राम है। इसी के समीप 'वुयन' और 'ख्रिब' भी हैं। वस्तुत: यह प्रदेश ज्वालामुखीमयी है। 'जयवन'[1] जिसकी ओर बिल्हण ने स्पष्ट संकेत किया है आजकल 'ज्यवन' नाम से प्रसिद्ध है।

'तक्षकनाग' जिसे कवि ने 'धर्मध्वंस' में उद्यत[2] कलि के सिर को काटने वाले चक्र की उपमा दी है, सांस्कृतिक पराजय का ज्वलन्त प्रमाण है। आजकल इसके समीप एक मस्जिद है तथा चारों ओर कबरें हैं। पानी भी गंदला है। अमल-सलिला का कहीं नाम भी नहीं। साथ ही यह अब चक्राकार रूप में नहीं। परन्तु केसर की क्यारियां और अंगूर की बेलें वैसी ही मदमाती हैं जिनका हमारे कवि को गर्व है। परन्तु वितस्ता इस से अब बहुत दूर सरक गई है। सम्भवत: दो से तीन मील इससे दूर है, जब कवि के समय में यह इसके साथ ही बहती थी। गत ८०० वर्षों में वितस्ता का कुछ दूर खिसक जाना स्वाभाविक ही है क्योंकि अपने प्रवाह में परिवर्तन लाना और इसकी दिशा बदलना नदियों का स्वभाव ही है और यह भूगोलिग परिवर्तन विश्वव्यापी है।

इसी खोनमुख ग्राम की पवित्र मिट्टी से जिसमें अंगूरों की मस्ती और केसर की पावनकारी महक समाई हुई थी बिल्हण का जन्म हुआ। उनकी माता और पिता के नाम 'नागदेवी' और 'ज्येष्टकलश' थे।[3] उनके स्वनामधन्य जनक पात-जंलि के महाभाष्य के टीकाकार थे।[4] वास्तव में हमारे कवि को संस्कृत के प्रति अगाध प्रेम अपने पिता से संस्कार-रूप में प्राप्त था।

कवि के जन्म अथवा मृत्यु सम्बन्धी कोई निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती। यद्यपि इसने अपने सम्ब्रन्ध में बहुत कुछ लिखा है[5] परन्तु तिथियां गणित के रूप से शुद्ध न हो कर कल्पित ही मानी जायेंगी। अत: हमें इस यशस्वी गीतकार के जन्म तथा मृत्यु की अवधि निर्धारित करनी होगी। यह सिद्ध करना होगा कि वे कितने वर्ष जीवित रहे।

---

१. विक्रमाङ्कदेवचरितम् XVIII, 70-71.
२. Ibid.
३. विक्रमाङ्कदेवचरित XVIIIम् 79, 80.
४. Ibid.
५, Whole of the XVIII canto of विक्रमाङ्कदेतचरितम्

इस विषय में हमें बिल्हण के समसामयिक साहित्यकारों की रचनाओं को टटोलना होगा। इसके अतिरिक्त स्वयं कवि की रचनाओं से यदि सम्भव हो 'परोक्ष-साक्षी' समेटनी होगी। सौभाग्य से कल्हण ने हमें उन वर्षों के सम्बन्ध में संकेत दिया है जिस समय बिल्हण कश्मीर से बाहर चले गये।[१] वे मध्यभारत में महाराज कलश के राजकाल में चले गये। महाराज कलश महाराज अनन्त के पुत्र थे जिनका राजकाल सप्पर्षि संवत १४ (१०२९ ई० पश्चात्) से सप्तर्षि संवत ३९ (१०६४ ई० पश्चात्) तक माना जाता है। अपने राजकाल के अन्तिम दिनों में महाराज अनन्त ने अपने पुत्र कलश का अभिषेक करवाया और अपने जीते-जी राज्य की बाग-डोर उसके हाथों में दी। यह सप्तर्षि संवत ४१[१०५५ ई० पश्चात्] की घटना है।[२] यह वर्ष बिल्हण के प्रस्थान का समय माना जाता है।[३] प्रतिभावान क्षेमेंद्र बिल्हण से कुछ ही वर्ष पूर्व जन्मा था, इस कारण उस की साक्षी अधिक विश्वस्त मानी जायेगी।

विदेश में जाने के बाद उसके जीवन की थोड़ी-सी झांकी हमें फिर कल्हण की राजतरंगिणी में मिलती है।[४] कर्णाटराज परमाडि जिसके राजकवि बिल्हण थे, ऐतिहासिक खोज के आधार पर कल्याण के चालुक्यवंशी विक्रमादित्य षष्टम् बनते है।[५] इनका राजकाल १०७६ ई० पश्चात् से ११२७ ई० पश्चात् माना जाता है।[६] इससे साफ है कि हमारे कवि विक्रमादित्य के राज्याभिषेक से दस वर्ष पूर्व ही कल्याण में पहुंचे थे। इस दशक में सम्भवत: कवि की प्रतिभा ने अपनी धाक बिठा दी होगी और विक्रमादित्य ने इनको राजा बनने पर 'विद्यापति' की उपाधि से सम्मानित किया होगा।[७] इस प्रकार सम्भव है कि बिल्हण ग्यारहवीं शताब्दी के पिछले पचास वर्षों में विद्यमान थे।

शंका की जाती है कि १०८८ ई० पश्चात् तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी क्योंकि उन्होंने अपने संरक्षक विक्रमादित्य ने प्रख्यात सैनिक अभियान को जो इसी वर्ष में दक्षिण की ओर किया गया, कुछ भी वर्णन नहीं किया है।[८] यह कीर्ति वाहक घटना यदि कवि जीवित होते उन से कभी छूट न जाती जबकि कई साधारण घटनाओं का उल्लेख उन के विक्रमाङ्कदेवचरितम् में आता है। इस दृष्टि ने बिल्हण

---

१. राजतरंगिणी VII 935 37.
२. क्षेमेंद्रकृत नृपावलि.
३. सुवृत्ततिलकम् (क्षेमेंद्र)
४. राजतरंगिणी 935—938.
५. A. B. Keith, History of Classical Skt. Lit.
६. Col. Tod (Rajasthan)
७. Rajatarangini 935-938.
८. V. G. Iyengar classical Skt. Lit.

के विदेश में रहने की अवधि १०६६ ई० पश्चात् से १०८८ ई० पश्चात तक बनती हैं। कुल मिला कर वे २२ वर्ष विदेश में रहे और वहीं परलोक सिधारे। परन्तु कई अकाट्य प्रमाणों की आंच ये अनुमान सह नहीं सकते।

जनश्रुति के आधार पर बिल्हण को तीन कृतियों का रचियता माना गया है[1]; 'विक्रमाङ्कदेवचरितभ्।[2] एक ऐतिहासिक काव्य, चौरपंचाशिका,[3] ५० पद्यों का एक मार्मिक गीत और कर्णसुन्दरी,[4] ४ अंकों की एक नाटिका। एक और पुस्तक 'बिल्हण चरितम्'[5] जो स्पष्टतया आत्मकथा है और उनके ही नाम से प्रसिद्ध है; परन्तु इसमें कहीं पर भी रचियता का नाम नहीं आता। प्रतीत होता है कि प्रस्तुत 'चरित्' बिल्हण के किसी प्रशंसक ने लिखा हो जो अज्ञात रहना चाहता था। परन्तु इसमें दिए गए वृत तथा तिथियां 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' के अठारहवें सर्ग से मेल नहीं खाते। अतः इस पुस्तक को मौलिक रचनाकी संज्ञा देना अन्याय होगा।

इन तीनों रचनाओं में 'विक्रम०' का ही महत्व बहुत अधिक है। इस काव्य के अध्ययन से यह बात अनायास प्रकट होती है कि प्रस्तुत ग्रंथ कवि की मंझी हुई कल्पना-शक्ति और अपूर्व जीवन-दर्शन का परिचायक है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि इस काव्य का निर्माण १०८८ ई० पश्चात् से पहले हुआ होगा क्योंकि इस में महाराज विक्रम के दक्षिण पर चढ़ाई करने का उल्लेख नहीं। इस महाकाव्य के १८ सर्ग हैं जबकि अन्तिम सर्ग वास्तव में कवि का आत्म-चरित है। इस ग्रंथ में इतिहास, शृंगार तथा युद्ध का अद्भुत सम्मिश्रण है। महाराज विक्रम की स्तुति पर अधिक स्याही खर्च की गई है। अपने संरक्षण की वीरता, दान-वीरता तथा ललितकलाओं से प्रेम बड़े विस्तार से चित्रित किया गया है। प्रकृति-चित्रण ऋतु-वर्णन इत्यादि पर पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। महाराज विक्रम विलासी भले ही हों,कामुक नहीं। बिल्हण का जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण उसे अपने संरक्षक के सम्बन्ध में अतिरंजना से काम लेने से रोकता है। यह तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनकी कल्पना ने ऐतिहासिकता को समूचे रूप में दबा-सा दिया है, वे कवि पहले हैं और इतिहासकार बाद में।

ऋतु-वर्णन की पृष्ठभूमि में बसन्त का यह सुन्दर शब्द-चित्रण देखिये—

---

१. Dr. Buhler, Kashmir Report.

.२ First published and edited by Dr. Buhler.

३. In Kavyamalaseries, Vol I.

४. Nirnaya Sagar Press, Bombay, 1895.

५. Kashmir Report.

"लग्नद्विरेफ ध्वनिपूर्यमाणं वासन्तिकाय: कुसुमं नवीनम् ।
आसादयामास वसन्तमासजन्मोत्सवे मंगलशंख लीलाम् ।।[१]

अथवा :

"निर्मलं प्रियतमं हृदये मे किं करोषि कलुषं रजनीश ।
मुञ्च रत्नचषके मदिरां मे न वेत्सि निजमंक-कलंकम् ।।[२]

चौरपञ्चाशिका के दो प्रारम्भिक श्लोक जो इसके कश्मीर-संस्करण में पाये जाते हैं, विक्रमांकदेवचरितम् के अठारहवें सर्ग में भी दुहराये गए हैं[३] जिन से स्पष्ट है कि कवि की यह कृति उस समय लिखी गई जब अभी उसे कर्णाट में राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इसमें 'कुन्तलाधीश'[३] का वर्णन (जो विक्रम का प्रतिद्वन्द्वी था) इस तथ्य की पूर्णत: पुष्टि करता है। प्राय: इसे 'चौर' कवि की रचना माना जाता है, जो वास्तव में नाम नहीं उपनाम है।[४] यह चौरसुरतपंचाशिका समाप्तांम्' पाठ से होता हैं।[५] यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि 'चौर' शब्द यहां पर प्रणेतम्ा का नाम न होकर खण्ड काव्य का नायक है जिसने राजकुमारी के प्रणय का अपहरण किया है।

यह पञ्चाशिका मूलत: एक 'प्रेम-विलाप' है जिसे 'मेघदूत' की कोटि में रखा जा सकता है। पचास पद्यों में समोई हुई यह प्रणय कथा करुण-मधुर तत्व लिए हुए है। राजकुमारी के हृदय की चोरी करने के अपराध में कवि को मृत्यु दण्ड दिया जाता है। मेहन्दी से रंगे जाने वाले हाथों पर हत्या के लाल लहू का मुलम्मा चढ़ने का भय बना रहता है। फांसी के तख्ते पर पहुंचने तक कवि अपनी मीठी याद मर्मस्पर्शी पद्यो में उगल देता है। वह अपना हृदय खोल कर रख देता है। इस खण्ड काव्य (आधुनिक परिभाषा में गीत) के हर एक पद्य का पहला समस्त पद 'अद्यापि' है जो इस गीत के करुण-रस में अधिक प्रभाव पैदा करता है।

कभी-कभी कालिदास की तरह बिल्हण भी अपनी कल्पना में वासना संजोये रखता है :—

"अद्यापि सा नखपदं स्तनमण्डलं यत्
दत्तं मयास्य मधुपान-विमोहितेन ।
उद्भिन्न-रोमपुलकैर्बहुभि: प्रयत्नात्
जार्गति रक्षति विलोकयति स्मरामि ।।"[६]

---

१. विक्रमांकदेवचरितम् VII, 41.
२. विक्रमांकदेवचरितम् XI, 63.
३. विक्रमांकदेवचरितम् I, 21.
४. Dr. Buhler's Kashmir Report.
५. Ibid.
६. Chaur Panchasika, (London edition by Sir Edwin Arnold) 3[illegible]

ऐसी भी जनश्रुति है कि इस गीत में दी गई घटना कवि बिल्हण के निजी जीवन का एक पृष्ठ है। यदि ऐसा न भी हुआ हो फिर भी ऐसी घटना कवियों द्वारा कल्पित भी हो सकती है। कल्पनाशील कवि अपनी मानसिक अभिव्यक्ति में यथार्थ की अपेक्षा अनुमान से अधिक काम लेते हैं। प्रस्तुत गीत के स्वाद में अभी तक कोई अन्तर नहीं आया।

'कर्ण सुन्दरी' इसी नाम की नाटिका की नायिका है। संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों का नामकरण उन्हीं नाटकों में वर्णित नायिकाओं के नाम पर ही किया है। कहीं-कहीं पर इसके अपवाद भी मिलते हैं परन्तु साधारणतः यह बात सच है। 'कवि कुलगुरु कालिदास' ने भी तो अपनी नायिका को इसी नाम के प्रख्यात नाटक में अमर बना दिया था। 'शकुन्तला नाटक' तो वस्तुतः भारत रमणी रूपी शकुन्तला का तो स्मारक ही है। 'कर्णसुन्दरी' चार अंकों की एक नाटिका है। जिसमें इसी नाम की नायिका और कर्णराज की प्रणय लीला का वर्णन है। यह कर्णराज चालुक्य भीमदेव के वंशज थे। अन्य संस्कृत नाटकों की भांति यह नाटिका न हो कर, नाट्य-गीत ही कहलायेगी। एक साधारण सी प्रेम कथा को नाटक का रूप दे दिया गया है, इसके अतिरिक्त इसमें अन्य कोई नाटकीयता नहीं। नाटकीय तत्वों के अंकुश ने कवि की प्रतिभा के पंख इस नाटिका में कतर से डाले हैं। इतिहास तथा कल्पना का समन्वय तो इसमें है, परन्तु दोनों निराधार और कुछ अंशों में अनर्गल। कवि की कल्पना नाटक के बन्धनों में कसमसाती-सी नजर आती है। गद्य सन्दर्भ संक्षिप्त तथा सरल हैं, सम्भवतः उन्हें जीवन के बहुत समीप ले आने का प्रयत्न किया गया है। प्राकृतों का प्रयोग भी सराहनीय है।

कवि नायक के मुंह से अपनी नायिका के रूप लावण्य के प्रति उद्‌गार इस प्रकार कहलाता है :—

"धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्यच्छवि-
श्चंद्रो मुक्त इव श्रिया किसलया निर्धौतरागा इव।
निःसारेव धनुर्लता रतिपतेः सुप्तेव विश्वप्रभा
तस्याः किंचपुरों विभान्ति कदलीस्तम्भा सदम्भा इव॥"

इन तीनों रचनाओं में 'विक्रमांकदेवचरितम्, ही सबसे अधिक उत्कृष्ट है। भाव पक्ष और कला पक्ष में जिस मधुर समवन्य की अपेक्षा रहती है उसके दर्शन हमें इस महाकाव्य में ही होते हैं। अन्य दो कृतियां केवल प्रयोग-मात्र के लिए लिखी गई प्रतीत होती हैं। 'पञ्चाशिका' में तो कवि की कल्पना अधिक निखर आई है परन्तु 'कर्णसुन्दरी' में इसका गला घोंट-सा दिया गया है। यूं तो बिल्हण की ख्याति का आधार-स्तम्भ 'विक्रमांकदेवचरितम्' ही है।

बिल्हण मूलतः रोमानवादी गीतकार हैं। रोमानवादी कविता कवि के व्यक्तिगत दृष्टिकोण और जीवनदर्शन की पराकाष्ठा है। मानव में निहित स्वच्छन्द

प्रवृत्ति के दर्शन हमें ऐसी ही कविता में होते हैं। ऐसी कविता के जन्म के लिए एक ऐसा वायुमण्डल होना चाहिए जिसमें न बाह्य आक्रमण और न ही आन्तरिक शोषण हो। ऐसा वातावरण कवि महाराज विक्रम के राज में स्वतः सिद्ध प्राप्त हुआ। यही सबसे बड़ा कारण है कि बिल्हण ने अपने जीवन की कटुता भुला देने के लिए क्षेमराज आदि की तरह दर्शन का आंचल न थामा और न इसी तरह आलोचना-शास्त्र के जटिल विषय को हाथ में लेकर मम्मट आदि की तरह मस्तिष्क-प्रधान ग्रंथों की रचना की। कल्हण के समान इसने इतिहास पर कपोल-कल्पना में बहुत कम भेद न किया। और तो और, क्षेमेंद्र की तरह इसने अपने समाज की भी भर्त्सना नहीं की, क्योंकि एक तो वह इस समाज से बहुत दूर था और दूसरा समाज की निन्दा करके जिसका अंग वह स्वयं भी था अपनी अवहेलना करना नहीं चाहता था। वास्तव में वह अपने कल्पना के संसार में इतना विभोर था कि उसे ऐसा करने के लिए न अवकाश ही था और न ही रुचि। इस कल्पना के एन्द्र-जालिक स्पर्श से उसने शब्द और अर्थ का ऐसा ताना-बाना रच डाला जिसकी तुलना संस्कृत के मूर्धन्य कलाकारों से ही की जा सकतीहै। इस ताने और बाने में परदेश में रहते हुए भी स्वदेश के अंगूरों की मादकता और कुंकम-केसर की पवित्रता है। एक सच्चे स्वच्छन्दतावादी कवि की भांति वह अपने मनोवेगों का यथार्थ चित्रण करने से नहीं झिझकता। इसके लिए न उसे शब्द ढूंढ़ने पड़ते हैं और न ही कलापक्ष के प्रति जागरूक रहना पड़ता है। उसका सम्पूर्ण काव्य-भण्डार उसके भावुक हृदय का दर्पण है। इन्हीं कारणों से उसके काव्य में कृत्रिमता कहीं भी दिखाई नहीं देती।

विदेश में रहते हुए भी कश्मीर की अपूर्व प्राकृतिक छटा ने उसके काव्य कौशल को अधिक प्रेरणामयी बनाया। मध्य भारत में अपने संरक्षक विक्रम की प्रशस्तियों में उसने यत्र-तत्र कश्मीर की प्रकृति का ही वर्णन किया है। यह ऐसे संस्कार थे जो मातृ-भूमि से दूर रह कर कभी भी धुल सकते थे। इस प्रकार विक्रमाँकदेवचरितम् में कर्णाट के प्राकृतिक वर्णन के व्याज से कवि वास्तव में कश्मीर-सुषमा का बखान करता है। ऐसा भी कभी-कभी प्रतीत होता है कि कवि परदेश में शारीरिक रूप से रहते हुए भी मानसिक रूप में कश्मीर में बैठा है। "शारदा कुंकुम, हिम तथा द्राक्षा[1]" की जन्म-भूमि की मीठी याद को वह कैसे भुलाता! हृदय के किसी अज्ञात प्रकोष्ठ में उसने यह याद संजों रखी थी, जब कभी इसे उभरने का अवसर मिला, तो कवि ने कोई चूक न की। भाषा में अपूर्व प्रवाह है; उन झरणों की तरह जो हिमालय के गर्भ से फूट फिर रुकने का नाम नहीं लेते। शैली वैसे ही निर्दोष है जैसे हिमालय के मस्तक पर कुंवारी बर्फ।

---

१. Rajatarangini I, 42.

अतः जब उसे इस बात पर गर्व है कि 'कुंकुम केसर' और 'कविताविलास' एक ही 'शारदामाता' के बेटे हैं, तो यह कोई अत्युक्ति नहीं सूझती :

'सहोदराः कुंकम केसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः[१]' ॥

यह बात तो बिना किसी अपवाद के कही जा सकती है कि मानव-भावनाओं का सूक्ष्मतम निरुपण करने में उनकी समता अपनी मातृ भूमि के साहित्यिक दिग्गज भी नहीं कर सकते। इन भावनाओं को प्राकृति के परिवेश में प्रस्तुत करना और उसमें स्वस्थ शृंगार की पैवन्द लगाना केवल उनकी ही रचनाओं में परिलक्षित होता है। सम्भवतः यही प्रबल कारण है कि जहां आलोचकों ने कालिदास को 'कविता कामिनी' का 'विलास' माना हैं वहां 'चौर' (बिल्हण) को इसका 'चिकुरनिकर' समझा है। बिलास और केश-पाशों की सजधज ही किसी भी रमणी के सौंदर्य प्रसाधन के अमोघ साधन हैं। बिल्हण के प्रति यह श्रद्धा अप्रत्याशित नहीं अपितु समीचीन हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध को कवि के इस श्लोक से ही सम्पूर्ण किया जाना वांछनीय होगा। कई मित्र इसे गर्वोक्ति समझते हैं; इस में आत्म प्रशंसा की गन्ध पाते हैं। प्रश्न केवल इतना है कि क्या यह 'श्लाघा' अस्थानीय है, अनुचित है? यदि नहीं, तो कवि के मुख से इसका वर्णन इस सत्य की महत्ता घटा नहीं सकता। सत्य तो हर रूप में सत्य ही होगा। यदि कवि ने उन मित्रों के विचार में ऐसी 'धृष्टता' की हो, तो यह केवल उसके आत्म-विश्वास का परिचायक है। इस श्लोक की पुष्टि गत ८०० वर्षों से सारा संस्कृत-संसार कर रहा है और कवि के स्वर से स्वर मिला कर रटता जा रहा है :

ग्रामो नासौ न स जनपदः सास्ति नो राजधानी
तन्नारण्यं न तदुपवनं सा न सारस्वती भूः।
विद्वान्मूर्खः परिणतवया बालकः स्त्री पुमान्वा
यत्रोन्मीलत्पुलकमखिला नास्य काव्यं पठन्ति ॥[२]

---

१. विक्रमांकदेवचरितम् I, 21.
२. विक्रमांकदेवचरितम् XVIII, 89.

कश्मीरी एवं हिन्दी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

—प्रो० चमनलाल सप्रू

भारतीय साहित्य मूलतः एक ही है, यद्यपि यह भिन्न-भिन्न भाषाओं या लिपियों में लिखा जाता है। मलयालम के वल्लातोल, तमिल के सुब्रह्मण्य भारती बंगला के रवीन्द्रनाथ या काजी नज़रुल इस्लाम, हिन्दी के दिनकर एवं मैथिली-शरण, उर्दू के इकबाल या कश्मीरी के आज़ाद, महजूर और मास्टर जी को एक ही विचार-प्रेरित करते हैं, जिनका आधार भारत की साढ़े पांच हज़ार साल से चली आई हुई साहित्य-गंगा है। यही भारत की समन्वयात्मक-मिलीजुली-एकता की प्रतीक है। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन से प्रभावित हिन्दी और कश्मीरी प्रेममार्गी सूफी कवियों की रचनाओं में भारतीय चिन्तन का एक अद्‌भुत साम्य दिखाई देता है।

इधर कई वर्षों से तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रवृत्ति हिन्दी भाषा में बड़े जोरों से हो रही है और प्रति वर्ष बीसियों ऐसे शोध-प्रबन्ध देखने को मिलते हैं। यह प्रवृत्ति भारतीय साहित्य की मूलभूत समन्वयात्मक प्रवृत्ति को समझने में सहायक सिद्ध हुई है। इस दिशा में आलोच्य प्रबन्ध एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। लेखक ने जैसा कि भूमिका में ही स्पष्ट किया है कि सूफी काव्य पर अभी तक कुछ भी शोध कार्य नहीं हुआ है और यह सही है कि हिन्दी में और शायद दूसरी भाषाओं में भी इस महत्त्वपूर्ण विषय पर जो पहली बार काम किया गया है वह डॉ० हण्डू का विद्वत्तापूर्ण शोध प्रबन्ध ही है।

कश्मीरी भाषा और साहित्य पर बंगला तमिल, मराठी, हिन्दी और उर्दू के समान काफी मात्रा में आलोचनात्मक ग्रंथ या कुछ हद तक मूलग्रंथ भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। अतः अधिक खोजकर, मूलग्रंथों की जो पाण्डुलिपियों में उपलब्ध है, ढूंढ लेने में बड़ी लगन और मनोयोग से काम करना पड़ता है। डॉ० हण्डू को भी इस प्रबन्ध को पूरा करने के लिए उनके कथनानुसार दस वर्ष लग गए हैं।

इस शोध प्रबन्ध को पढ़कर जो एक महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है वह यह है कि जब हिन्दी में सूफी प्रबन्ध का प्रवाह बहुत कुछ क्षीण हो गया था, कश्मीर में सूफी प्रबन्ध उसी समय जन्म ले रहा था।

सारी पुस्तक को निम्नलिखित खण्डों में बांटा गया है:—

प्रथम खण्ड:—१. आलोच्यकाल की राजनैतिक परिस्थिति।

२. आलोच्यकाल की सामाजिक परिस्थिति

३. आलोच्यकाल की धार्मिक परिस्थिति।

चौथे अध्याय में सूफीमत के विकास पर प्रकाश डाला गया है। सूफी सन्तों के कश्मीर प्रवेश पर पाँचवें अध्याय में प्रकाश डाला गया है। छठे अध्याय में कश्मीर तथा भारत के सूफी सम्प्रदायों का परिचय दिया गया है। सातवें अध्याय में कश्मीर तथा भारत के सूफी केन्द्रों से पाठकों को अवगत किया गया है। सूफी सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आठवें अध्याय में यथेष्ठ चर्चा की गई है। दूसरे खण्ड में कश्मीरी तथा हिन्दी में उपलब्ध सूफी साहित्य का क्रमश: परिचय कराया गया है। तीसरे खण्ड में कश्मीरी और हिन्दी सूफी प्रबन्ध-कारों पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गई है।

चौथे खण्ड में कश्मीरी और हिन्दी सूफी मुक्तक काव्यों पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गई है। पाँचवा खण्ड एक महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालता है और वह है पारस्परिक देन और उनके मूलभूत कारण। अन्तिम खण्ड में पहले अध्याय में कश्मीरी तथा हिन्दी सूफी प्रबन्धकारों का परिचय दिया गया है और इस अध्याय में कश्मीरी तथा हिन्दी के सूफी मुक्तक कवियों का परिचय दिया गया है।

आलोच्यकाल की कश्मीर की राजनैतिक परिस्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है:—कि इस समय राजनैतिक अत्याचारों के साथ-साथ प्रकृति के भी आए दिन प्रकोप रहे। जनता को प्राय: दुर्भिक्ष के दुर्दिन देखने पड़े। जैनुलाब्दीन तथा शाहजहां ने जनकल्याण के लिए भरसक प्रयत्न किए। सूफियों ने कश्मीर में अपनी अमृत वाणी से प्रेम का सन्देश सुनाया और यहाँ की जनता को सान्त्वना व राहत मिली। सूफी-सन्तों के लिए कश्मीर की दुखित व पीड़ित जनता के बीच प्रेम तथा करुणा के प्रसार के लिए पर्याप्त क्षेत्र मिला था। इस काल की राजनैतिक समीक्षा का अन्त करते हुए विद्वान लेखक ने सिद्ध किया है कि कश्मीर और भारत के अन्य प्रान्तों के अतिरिक्त कश्मीर और विदेशों के बीच कवियों, विद्वानों तथा सूफी-सन्तों का आना जाना रहा, जिससे इनका अवश्य परस्पर आदान-प्रदान रहा होगा।

आलोच्यकाल की सामाजिक परिस्थिति पर जो प्रकाश विद्वान लेखक ने डाला है उससे यह बात सिद्ध होती है कि यहाँ की राजसत्ता पर सूफियों का नगण्य प्रभाव रहा यद्यपि सूफियों का शासक लोग बड़ा आदर करते थे। यही कारण है कि सूफी लोग राजनैतिक उथल-पुथल और प्रभुसत्ता के प्रति उदासीन रहे।

आलोच्यकाल की धार्मिक परिस्थिति पर तर्कसंगत प्रकाश डालते हुए विद्वान

लेखक ने बताया है कि कश्मीर के ब्राह्मणों में शैवधर्म का प्राधान्य था और इस्लाम के आगमन के साथ यहां इस्लाम धर्म में दीक्षित बड़े-बड़े विद्वान और उलेमाओं द्वारा फारसी सूफी सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा था। "कश्मीर अण्डर दी सुल्तानस" के पृ० २२४ को उद्धृत करते हुए लेखक ने लिखा है—"हिन्दू मुस्लिम सन्तों तथा मुसलमान हिन्दू सन्तों के प्रति आदर की भावना से देखने लगे।"

सूफी सोऽहम शिवोऽहम् तथा अनलहक एक ही शब्द के पर्याय मानकर अपने उपदेश देने लगे। यह परम्परा लल्लद्यद और शेखनूरुद्दीन से शुरू होकर मास्टर जी और अहद ज़रगर तक चली आ रही है। मुझे सारी किताब पढ़कर एक बहुत बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि वर्तमान काल के मृत और जीवित सूफी कवियों का वर्णन करते हुए लेखक ने मास्टर जिन्दा कौल का कहीं भी वर्णन क्यों नहीं किया है ? यह बात सही है कि कश्मीरी पण्डित संस्कृत के विद्वान रहे हैं लेकिन उन्होंने शासन के प्रभाव से समय-समय पर अरबी, फारसी और उर्दू का भी यथेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया लेकिन अपने इस अध्याय में पृष्ठ ४० पर डा० हण्डू मैकाल्फ महोदय के कथन को संकलित करके लिखते हैं "कि सिक्खों का एक शिष्ट मण्डल गुरु अर्जुन देव से मिलने आया। उसने शिकायत की कि कश्मीर के पण्डित उन्हें उनकी वाणी का पाठ करने से रोककर संस्कृत के ग्रन्थों का मनन करने तथा पूजा विधि अपनाने के लिए बाध्य करते हैं। उनकी बात न मान ली जाने पर उन्हें निष्कासन की धमकी दी गई है।" मैं इस वक्तव्य को मानने के लिए तैयार नहीं हूं क्योंकि सिख सम्प्रदाय के गुरुओं के प्रचार के समय कश्मीरी पंडितों का शासन में क्या अधिकार था ? जिसके फलस्वरूप वह सिखों पर ऐसा हुकुम चलाते ? यह बात विचारणीय है।

सूफी मत के विकास नामक अध्याय में लेखक ने बताया है कि सूफी मत का प्रसार भारत में पूर्ण शान्ति तथा अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलकर हुआ। उस समय सामन्त-प्रथा से जर्जरित मध्ययुगीन भारत की धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक विचार धारा संकुचित हो गई थी। कर्मकाण्ड की अधिकता, अन्धविश्वास का प्रचलन एवं ब्राह्मण धर्म की क्लिष्टता तत्कालीन विशेषतायें थीं। ऐसे ही समय जब सूफियों ने सर्वजनग्राह्य प्रेम भावना पर आधारित स्वमत का प्रचार किया तो अधिकांश जनता इनकी ओर आकृष्ट हुई।

सूफी सन्तों का कश्मीर प्रवेश नामक अध्याय में लेखक ने विस्तार और खोज से कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत किया है। सूफी सन्तों के कश्मीर आगमन के समय यहाँ हिन्दुओं में भी अनेक विद्वान सन्त मौजूद थे और सूफी मत के यहां पहुंचते-पहुंचते शैवमत का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसका उल्लेख डॉ० शम्सुद्दीन अहमद ने भी अपनी एक रेडियो वार्ता (१-६-'६६) में किया है—"यहां

हिन्दू धर्म की प्रधानता के कारण ब्राह्मणों में भी ऐसे सन्त थे जो शैव तथा वेदान्त शास्त्री थे। जिस रंग में सूफी मत कश्मीर में पहुंचा वही उसी रूप में अमिश्रित नहीं रह सका। शैवमत का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। शाहगफूर की यह पंक्तियां उपर्युक्त वक्तव्य को और अधिक स्पष्ट करती हैं :—

योत यिथ ज़न्मस केंह छु न लारुन,
धारनायि दारुन सूहम सू।

(इस जन्म में कोई सारभूत वस्तु ग्राह्य नहीं, अतः हे प्राणी ! सोऽहं के ध्यान में अन्तर्लीन हो जा) कश्मीरी प्रबन्धात्मक सूफी काव्यों का विस्तृत परिचय देते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि "कश्मीरी में प्रेमाख्यान उपलब्ध हैं, वे अधिकांश रूप में फारसी, पंजाबी, अरबी तथा उर्दू आदि के कुशल रूपान्तर हैं। यह कालविशेष उन्होंने १७७५ ई० से सन् १८८५ ई० तक माना है।

जिन कश्मीरी और हिन्दी के प्रेमाख्यानक (सूफी) प्रबन्ध काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन डॉ० हण्डू ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया है उनकी सूची इस प्रकार है—लैला मजनून (महमूदगामी रचित), शीरीं खुसरो, यूसुफ जुलेखा (महमूदगामीकृत) हारूनरशीद, हियमाल (वलीअलामतू रचित) बहराम व गुलअन्दाम, वामिक अज़रा, हीयमाल (सैफुद्दीन तारवली रचित) गुलरेज, तोत, लैलामजनून, (पीर गुलाम महीद्दीन, मिसकीन रचित) जेबानिगार, सोहनी मेंहवाल, चन्द्र वदन (पीर अीज़ज़ अल्लाह हक्कानी कृत) मुमताज़ बेनज़ीर, यूसुफ जुलेखा (हाजी महीउद्दीन 'मिस्कीन' सरायवली कृत) गुलनूर गुलरेज़, रेणा व ज़ेबा, लैला मजनूं (कबीर लोनकृत)।

हिन्दी :—चदायन, मृगावती, पद्मावत, मधुमालती, चित्रावली, ज्ञानदीप, पुहुपावती, हंसजवाहर इन्द्रावती, अनुराग बांसुरी, यूसुफ जुलेखा, प्रेम चिनगारी।

कश्मीरी सूफी प्रबन्ध काव्यों में प्रेमतत्व ढूंढ़ने में लेखक ने बड़ा परिश्रम किया है। कुछ पंक्तियां उपर्युक्त वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिए काफी है :—"जो मंसूर बनना चाहे वह क्यों न प्रेमाग्नि में तपकर अपने कांसी जैसे जीवन को स्वर्णमय बना ले जिसका मूल्य अत्यधिक है। मजनूं का प्रेम मंसूर की भांति पवित्र था।' (नारस मंजबाग वसि मंसूर, ××× सरतल त्राविथ म्वोल छु स्वनस ...इत्यादि) सुन, प्रेम की अवस्था में क्या होता है। 'इश्क-मजाज़ी का प्रकटीकरण इश्क-हकीकी में हुआ :--

(बोज़ महमूद क्या ग'यि, इश्क बा'ज़ी,
हकीकत द्राव ज़ाहिर अज़ मजाज़ी)

फरहाद अपने आपको साधक मानकर एक स्थल पर शीरीं से कहता कि वह केवल एक साधक है और वही उसकी परमात्मा है (व छुस बन्दु च छख बरहक

खुदा म्योन) । प्रेम तत्त्व से ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति हुई—(इश्क सा'त्यन सोरुय आलम पा'द गव) गुलअन्दाम के विरह में पीड़ित बहराम जोगी बनकर कठिनाइयों को पार करता हुआ आगे बढ़ता है। वह शरीर पर भस्म मलता है तथा कन्था पहनता है। प्रेमिका का प्रेम उसे साधना-पथ पर अग्रसर करता है। —(वजीर शाहजादन लोग सनियास बोलुन जन्दाह, मोलुन त'म्य सूर त सास)

साधना के पथ पर चलने वाले का हिन्दू अथवा मुसलमान के रूप में भेद-भाव कैसा, साधक तो केवल प्रिय से एकमेव होने की इच्छा रखता है—(अज दीन खुद बेगान नै ह्योन्द नै मुसलमान) नायिका का सौंदर्य ही ईश्वर का नूर है, जिससे विमोहित होकर नायक 'मैंयार' उपलब्ध करने का प्रयत्न करता है :—

सर कर हर मुख हर छुय,
ग्वोर मुख परमीश्वर छुय

कश्मीरी भाषा में उपलब्ध मुक्तक सूफी रचनाओं का भी विशेष महत्त्व है लेखक के अनुसार कश्मीरी मुक्तक काव्य की रचना चौदहवीं शताब्दी से ही होने लगी थी। इस काल में सूफी-सन्तों तथा कवियों की निर्गुण उपासना आदि का वर्णन मिलता है। कश्मीरी के ऐसे सूफी सन्तों की परम्परा लल्लेश्वरी से मानते हैं। अन्य चर्चित कवि इस प्रकार हैं–शेख नूरुद्दीन, स्वछ क्राल, शाह गफूर, महमूद गामी, न्याम साब रहमान डार, वाहब खार, शम्स फकीर, अहमद बटवारी, शाह कलन्दर, असद परे, बाज महमूद, अहमद राह आदि।

उपर्युक्त कवियों के प्रेम तत्त्व पर भी लेखक ने विस्तार से प्रमाण डाला है। कुछ एक पद्यांश दृष्टव्य हैं। शिव हो केशव हो, महावीर हो अथवा नारायण, कुछ भी हो, उसका नाम स्मरो। वह मुझ निराश्रिता को भव बन्धनों से मुक्ति दें। चाहे वह यह कहलावें या चाहे वह कुछ कहलायें—(शिव वा, केशव वा, जिन वा, कमलजनाथ नाव दारिन यिहुय। म्य अबलि कास्यतन बव रुज, सु वा सुवा सुवा सु) एक तू है एक मैं हूं ऐसा न गिन। यह तो केवल तेरा अहंभाव ही है (अख च त बेयि ब गंजर म वा, हवा यि छुय गुमानय)

तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूफी प्रबन्ध काव्यों में 'हियमाल' को छोड़कर कश्मीरी सूफी कवियों ने अन्य कथानक अन्य भाषाओं से उद्धृत किए हैं। हिन्दी और कश्मीरी दोनों ही सूफी काव्य एक ओर जहाँ मसनवी शैली को प्रमुखता देते हैं, वहां दूसरी ओर वे वस्तु योजना में भारतीय प्रबन्ध काव्यों की वर्णन शैली का भी स्पर्श करते हैं। जहां हिन्दी के सूफी कवियों ने तत्कालीन बादशाह अपने गुरु तथा अपने मित्रों आदि का परिचय दिया है वहां कश्मीरी सूफी इन बातों में अधिक रुचि नहीं रखते हैं। हिन्दी के सूफी प्रबन्ध काव्यों में अन्तर्जातीय विवाह का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है। नायक तथा नायिका दोनों ही सजातीय हैं। कश्मीरी काव्य 'जेबानिगार' इस परम्परा से

सर्वथा भिन्न रूप प्रस्तुत करता है।

जीवात्मा और साधक में साम्य दिखाते हुए लेखक ने दर्शाया है कि उपर्युक्त गुण आलोच्य ग्रंथों में प्रस्तुत हुआ है। सूफी प्रेमाख्यानों में आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन हुआ है। इनमें दो जीवनों का एकीकरण दिखाया गया है। यह एकीकरण कश्मीरी प्रबन्धों में नायक-नायिका की मृत्यु अथवा विवाह की संस्था द्वारा दिखलाया गया है साधक जीवात्मा का प्रतीक है और तभी वह मिलन के लिए व्याकुल रहता है। उसे विश्वास है कि एकीकरण अथवा वस्ल (ईश्वर मिलन) होने पर ही सम्पूर्ण वस्तुएँ सुलभ हो सकती हैं। इसके लिए गुरु (मुरशिद) का पथ प्रदर्शन आवश्यक है :—

द्वन वन्य वस्ल गव रूद कुनुय, कुनिरस तिहिन्दिस कुस हेयि नाव

कुछ एक पंक्तियाँ हिन्दी और कश्मीरी सूफी काव्य में एक जैसी मिलती हैं— दृष्टव्य :—

(क) अल्लाह त हू-हू छुम दर मनँ, व क्या वनँ यी गव ज़हूर।

(ख) साधी देखो अपने मांही, घर में पड़ी काकी परछाई।

(क) दरियावस मंज़ कतर द्राव, कतरस मज़ दरियाव चाव।

(ख) समन्दर समायो बूँद में, अचरज बड़ो दिखायो।

इस प्रकार संक्षेप में हम देखते हैं कि डॉ० हण्डू ने दो भाषाओं की एक विशेष धारा का खोजपूर्ण अध्ययन कर भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता को सिद्ध करके हिन्दी और कश्मीरी दोनों भाषाओं की उल्लेखनीय सेवा की है। इस शोध प्रबन्ध को पढ़कर भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता मिलेगी।

पुस्तक की छपाई आदि ठीक ही है किन्तु कश्मीरी शब्दावली में अक्षर-विन्यास (वर्त्तनी) की अनेक अशुद्धियां हैं। "न्याम-साव" को बार-बार "नग्म साव" और 'दारुन' को 'वारुन' लिखना दिखाता है कि लेखक को फारसी लिपि का यथेष्ठ ज्ञान नहीं होगा। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि डॉ० हण्डू ने कश्मीरी भाषा एवं साहित्य की प्रस्तुत प्रबन्ध लिखकर सराहनीय सेवा की है।

———

काव्य धारा

वापसी

—पृथ्वीनाथ मधुप

नहीं है—
उस अन्धी गुफा का
जसें धुएँ-सा अन्धकार
मेरा परिवेश
और
जलती लाल मिर्चें—
मेरी हवा,
सूरज—
कोलतार का गोला;
वह दरिन्दा
जो—
एक सभ्य मिठबोले इनसान का लबादा ओढ़
आलिंगन में कस
मुझे
थोथे आदर्शों का क्लोरोफार्म सुंघा
गले की नसों में
अपने पैने लम्बे नुकीले दांत गढ़ा
एक एक बूंद खून चूस
घटाघट पी गया—
मेरा हमदर्द ! !
धीरे बहुत धीरे
लौट रही है—
मेरी चेतना,
मेरी दृष्टि,
भर रही है—
फेफड़ों में ताजा हवा,
सूरज—
महाग्रहणमुक्त हो रहा।
सिर के ऊपर
है दिखने लगा

एक टुकड़ा आसमान का।
अपने होने लगे हैं—
अपने हाथ,
अपनी जबान……!!
साथ साथ
गहराता जा रहा है दर्द
गले के गहरे जख्मों का……!!!
कहाँ है —
अन्धी गुफा
अचेतावस्था
दरिन्दे की 'नेहिल' झकड़न
और
नुकीले दांतों की अचीन्ही चुभन???
नंगा बिलकुल नंगा—
यथार्थ
बेशर्म-सा,
अन्तर के अन्दर के अन्दर
किसी कोने में दबी—
गर्मी
अन्यायों से झूझने की,
उभरते जा रहे हैं
मेरे सम्मुख।

———

भंगी

प्रेमनाथ 'प्रेमी'

मैं हूं अमलता का जनक,
छविहीन पंथों का निखार।
मैं स्वर्ग का निर्माण हूं,
धर कर नरक का आप भार।

बलिदान ईसा का प्रकट,
मैं दूर करता मल-विकार।
यह केतु सा कूचा कलित,
बिगड़ी दशाओं का सुधार।

जो वीथियां मेरी तरह,
सहती रही हैं पद-प्रहार।
मैं जोड़ता उनके सपन,
जो टूट जाते बार-बार।

विष पी रहा त्रिपुरारि मैं,
सहता फनी का फूत्कार।
मैं रुग्णता की रोक हूं,
होकर स्वयं उसका शिकार।

मैं दीनता का चित्र हूं,
इक हीनता का इश्तिहार।
इनसानियत का खंडहर,
अति दग्ध भीतर से चिनार।

मैं ओस का हूं अश्रु-कण
प्यासे पपीहे की पुकार ।
अपमान का अवतार हूं,
निज कामनाओं का मज़ार ।

मल के विरुद्ध मैं चक्र-व्यूह,
फरुहा प्रखर यह शस्त्र धार ।
कल्याणकारी हूं मगर,
आते प्रलय का सूत्रधार ।

उत्तुंग वर्णों का हृदय,
है मोरियां ले बेशुमार ।
जिन पर युगों का मल जमा,
घातक महा जिनका पगार ।

जिनमें घृणा के, वैर के,
कटीणु करते हैं विहार ।
वह आज कूचा, हाथ में,
कूचा लिये लूंगा बुहार ।

———

करबला का अप्रतिम बलिदान

—अकबर जयपुरी

संसार के कोने कोने में गुन तेरे गाए जाते हैं।
शब्बीर तेरे पर चमके तले सब लोग आए जाते हैं।।

वह मोत से भूके लड़ते हैं, तलवारें खाये जाते हैं।
है धूप की गरमी, प्यास की तेज़ी, ख़ूंमें नहाए जाते हैं।।

शब्बीर ने ऐसे काम किए, मनमोह लिए, दिल जीत लिए।
पैग़ाम तेरे, संसार में हर वर्ष सुनाए जाते हैं।।

जब धर्म की नैया तूफ़ां में, आन फँसी, कोई न रहा।
शब्बीर लहमें डूबके इसको पार लगाए जाते हैं।।

जब पाप की पछवा चलती थी, इमां की खेती ज़लती थी!
यूं ख़ूं से बहत्तर प्यासों के, गुलज़ार बनाये जाते हैं।

घरवार लुटे, खैमे भी जलें, लहराता रहे सत्य का परचम।
अन्याय के भड़कते शोलों को, वह ख़ूंसे बुझाए जाते हैं।

———

ग़ज़ल

—अकबर जयपुरी

भूल जाएँ रंगो बू महकी फ़िज़ाओं से कहो ।
गुनगुनाना छोड़ दें, भीगी हवाओं से कहो ।।

आर्ज़ू की एक अजंता खो गई तो क्या हुआ ।
सौ अजंताएं उभारें कल्पनाओं से कहो ।।

है समय का तक़ाज़ा, भूल न जाए कहीं ।
रूप अंगारों का लें, ठंडी चिताओं से कहो ।।

एक पगडंडी प्रेम की तो गई है चांद तक ।
बस इसी पर हम चलेंगे रहनुमाओं से कहो ।।

यह समय हैं पत्थरों का, कोई कुछ सुनता नहीं ।
चीख़ती फ़रयाद करती आत्माओं से कहो ।।

आजकल की दोस्ती डीली है कांटे दार सब ।
चाहते हो फूल तो वाआश्नाओं से कहो ।।

धूप जो चढ़ती ही जातो है तो कोई ग़म नहीं ।
फैल जाएं चारों ओर "अकबर" यह छाओं से कहो ।।

———

तुम कह दो मां

कूला कौल 'सरित'

तुम कह दो मां।
इस पार सुनूँ उस पार चलूँ,
तुम कह दो मां।
निर्झर जब झर-झर रोता है,
अपनी गाथा कुछ कहता है,
नित नयी व्यथा को गाता है,
सुन मेरा मन विह्वल होता है।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूँ उस पास चलूँ—
तुम कह दो मां।
उपवन की लतिका को देखा,
पल्लव से स्रवित रुधिर बहता,
जीवन की नश्वरता से आहत,
सुकुमारी को पीड़ित देखा।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूँ उस पार चलूँ
तुम कह दो मां।
जब आंख मूंद मैं बढ़ी उधर,
इस पार रुदन ने खींच लिया,
आहत ने आलिंगन चाहा,
पग बढ़ा पथिक मन कराहा।
तुम कह दो मां।
जब भी तारों को स्वरित किया,
सरगम में नूपुर बंधन चाहा,
आहत हो पीड़ित झंकार रुदन,
किसकी पीड़ा में चिल्लाया।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूँ उस पार चलूँ—
तुम कह दो मां।

जीवन परिधियों में बंधा पड़ा—
निर्जीव कल्पना का शव सा,
उत्पीड़ित मानव के बंधन में—
निज स्नेह उंडेलूं अमृत सा।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूं उस पार चलूं—
तुम कह दो मां।
सरिता की कल कल सुनी मगर—
कल-कलित भाव था दूर पड़ा,
सागर से मिलने की इच्छा—
मैं मिलन तार दूं कह दो मां।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूं उस पार चलूं—
तुम कह दो मां।
बाला के सज्जित सपने सब—
जब प्रथम रात में मलिन हुए,
वे रुंधे रुंधे से ठिठक गये।
उन सपनों को संवारूँ मां।
तुम कह दो मां।
जीवन यदि प्रबल वितृष्णा है,
फिर जीने की क्यों आस भला ?
पल पल मृत्यु आवास बने—
इस जीवन में समरसता डालूं मां।
तुम कह दो मां।
इस पार सुनूं उस पार चलूं—
तुम कह दो मां।

———

टूटा-सा, कटा-सा

—मोतीलाल चातक

जानी-पहचानी
सड़क पर चिपक गए तेरे विचार,
तारकोल की भांति,
किसने किसको आकर्षित किया ?
सड़क ने तारकोल को
अथवा तारकोल ने सड़क को
क्या यह आचार-विचार की परम्परा है ?
परम्परा !
किस परम्परा की बात कर रहे हो ?
तू टूटा है,
यदा-कदा के क्रम से,
नगर के पाथर-सा,
जिसे किसी ने नगर से दूर किसी अपरिचित डगर पर,
फेंक दिया,
तू कटा-कटा सा है,
अपने भूतकाल से,
केवल चिपका तारकोल,
अपनी कुण्ठा से,
'बन्दर' का बच्चा, जो ठहरा तू,
बिल्ली का बच्चा नहीं,
किसे जानोगे-पहिचानोगे ?
तू 'भीमसेन' के हाथों उड़ते गज की भांति,
वातावरण में खो गया,
सूत्रहीन-सा,
पर यहां सूत्र की परिधि में सभी घूमते हैं
फिर-फिर कर चूमते हैं इसी सूत्र को,
पर शून्य की परिधि है,
गोल-गोल सी

जो वियतनाम की मृत माता की लाश को
घेरकर बैठी है
इसी घेरे में उसके अनाथ आकायहीन बालक,
बिलखते हैं,
कब तक ये लाशें,
पथ पर पड़ती रहेंगी, सड़ती रहेंगी ?
कब तक ?
रौद्र रस की पूजा होगी ?
वीभत्स सड़न,
कबतक शक्तिम जीवन का इतिहास दोहरायेगी ?
कब तक,
रोता रहेगा सुहाग-सिंदूर ?
जो पीछा करता रहेगा उसका,
जो तुम में है,
जिसकी धुन में पागल मैं,
तुम्हें समझा रहा हूं,
तर्क की बातें,
पर तू दूर भागता जा रहा है,
बहुत दूर,
कहाँ ?
कौन जाने ?

———

ठंडा आईना

—महाराज कृष्ण संतोषी

दिन भर
धूप के टुकड़े बटोर
मैंने जेबों में भरलिए
याद तुम्हें है ना !
तुम ने भेंट में जो दिया है मुझे
एक ठंडा आईना
मैं उसमें प्रतिबिंबित
हर अपनी छाया को
इन धूप के टुकड़ों से
सैंकना चाहता हूं
मैं जानता हूं
मैं सूरत गीली मिट्टी नहीं
जिसे दिया जा सके
कोई भी आकार
मेरी हालत है
पानी में पड़े सर्द तबे सी ।

———

गटर में सड़ रही लाश

—शशिशेखर तोषखानी

घटनाओं के गन्दे बदबूदार नाले में
एक सड़ी लाश-सा
फेंक दिया गया हूं।
अवश दोहराता हूं
बूढ़ी वेश्याओं-सी इमारतों,
अर्थहीन-शोर की जुगाली करती हुई सड़कों,
और इस्तेमाल किये हुये कॉण्डम-से बेकार
मस्तिष्कों के बीच
प्रवाहित होने का सूर्यविहीन यात्राक्रम !
अँधेरे को सींगों से पकड़ लेने
पराजित हड्डियों को कविता में बदल देने
और माँस को चीथ-देने वाली खामोशियों पर
अपने हस्ताक्षर अंकित करने का रोमाँच
मेरी मुठ्ठी से छूटकर
जाने किस कोहरे में खो गया है !
कई शब्द मौत का-सा आकर्षण लिए होते हैं—
जैसे 'साहस'—
[''साहस है अन्तिम मूल्य'' कहा था हेमिंग्वे ने
और अपनी ही बन्दूक से अपनी हत्या कर डाली थी।]
जैसे 'विकल्प'—
एक निहायत ही मीठा और नशीला केप्सूल
जिसे खाकर मैं
सो रहे शहर में आधी रात को
किसी दस्यु की गोलियों के धमाकों-सा
छूटना चाहता हूँ।
आँकड़ों, मानचित्रों और ग्राफ के बिन्दुओं पर चढ़ रहे,
जश्न मनाते
और किसी बाज़ारू गीत से बेसबब बजते जा रहे

लोगों को
धक्का देकर
नीचे शून्य की गहराइयों में गिरा देना चाहता हूं।
अपने रक्तचाप की रिपोर्ट को
इतिहास के सुनहरे चौखट में मढ़कर
मुग्ध निहारते
और नस्ली कुत्तों को पुचकारते हुए
अभिजात्य की
मन्द-मन्द भद्र, सन्तुष्ट हँसी के
दाँत तोड़ देना चाहता हूँ।
लेकिन, लेकिन—
फटे हुए जूतों, टूटे फर्नीचर
और बन्द हो चुकी घड़ियों के साथ रखी गई
वह जो साँस है—
अपने से अपनी अर्थवत्ता पूछती हुई—
वह मेरी है।
रात के सन्नाटे में
सिर-पैर ढाँपे हुए
अपने व्यक्तित्व से पहचान के सभी चिन्ह हटाकर
एक निजी जासूस-सा शहर के बीच से गुज़रता हूँ
और हस्पतालों की गन्ध और दुकानों की कतारों को
तेज़ी से पीछे छोड़ता हुआ,
उस आदमी के बारे में तहकीकात करता हूँ
जिसकी लाश को
घटनाओं के गन्दे, बदबूदार नाले में
फेंक दिया गया है!

'एक अपरिचित आकाश' से साभार।

———

मेरा शहर

रतनलाल शांत

सुबह जागता है मेरा शहर
जमुहाइयों के बीच
और उतरता है गलियों में
गुज़रता है फिर इनसे
बेतहाशा भागती
और छींटे उगलती नालियों से
दामन बचाता हुआ,
सूखे चकत्तों पर
बचा-बचाकर पांव धरता हुआ
और जाता है सीधी
मन्दिर मस्जिद गुरुद्वारा।
दिन में मौसम की बात करता है
और खुदा की दाद देता है।
शाम को जब ज़िंदगी शुरू होती है
उधर
तो इधर
मेरा शहर ऊंघने लगता है।

——— —

ग़ज़ल

—कु० मंजूरा अख्तर

छोड़दे नफ़रत बिस मत घोल।
बोल सहेली मीठे बोल॥

कान में अमरित रस बरसाकर।
प्यार के हरदम मोती रोल॥

प्यार ही मन की पूजा है।
प्यार से दिल की गिरहें खोल॥

हुस्न की मंजिल दिल से दूर।
इश्क़ बेचारा डाँवाडोल॥

मिर्स में यूसुफ़ बिकते हैं।
सूत की अंटी उनका मोल॥

इश्क़ में कैसी हेरा फेरी।
नैन की टकड़ी सच्चा तोल॥

हार में भी है उसकी जीत।
इश्क़ का डाला जिसने डोल॥

आज बनी जोगन "मंजूर"।
हाथ में है खाली कश्कोल॥

———

गीत

--सुभाष प्रेमी 'सुमन'

मेरे घायल गीतों पर मलहम मत मलना,
जन्म-जन्म इनको घायल रहना ही होगा।।

प्यास लगी, पर प्यास न मेरी बुझने पाये,
अर्कोपल चाहे पल-पल मुझको झुलसाये।।

मेरे मानस पर पावस की बूंद न टपके,
मैं मरुथल हूं, बिन बादल रहना ही होगा।।

झूम रही है मस्ती में आकर मधुशाला,
छलक रही है भरे हुए प्यालों से हाला।

मधुबाला हूं, मदिरा-पात्र लिए कर में भी,
स्वयं न पी पाने का दुःख सहना ही होगा।।

कब तक पीहर की मनहर घाटी में भटकूं,
आदि-अंत की कतरव्योंत में कबतक लटकूं।

चंचल अर्णा हूं, अचलांचल से चलकर अब,
सागर के घर कल-कल कर बहना ही होगा।।

———

परछाई

—क्षमा कौल

किसी एक मुद्रा में
मैं बैठी,
मेरे पीछे भी कोई इसी मुद्रा में
सामने के दर्पण में
व्यक्त था;
देखा,
वह पीछे की मूर्ति,
दैन्य से पूर्ण थी,
आर्तनाद भी था,
बहुत से दोष थे,
खोया संतुलन था
मन का,
रिश्तों की टूटन थी,
मन में घुटन,
शरीर में कम्पन,
बदन में झुर्रियां!
वह दुःख की प्रतिमा हाथों से दिल थाम,
शायद अतीत में जा डूबी थी,
मुझे दया आई,
पीछे मुड़ी, उसका दुःख पूछने-बांटने।
देखा,
चकरा गई,
वह थी,
मेरी अपनी ही परछाई!

'पम्पोश' से साभार

———

बंद खिड़की

—राजेन्द्र बिन्द्रा

बंद खिड़की खुली !
बंद खिड़की खुली; —धूप छन छन के आई है उझली-धुली।
बंद खिड़की खुली।

इक नई सुबह फिर जगमगाने लगी;
मंद बहती हवा मन लुभाने लगी;
चिर-प्रतीक्षित घटा मन भिगोने को है,
क्या छटा आस्माँ में है छाने लगी।
करके रोशन चली !
करके रोशन चली; —सतरंगी इक किरण अंधियारी गली।
बंद खिड़की खुली।

श्रम के माथे की सब सिलवटें मिट गईं;
भ्रम के बादल छटे सिकुड़ने मिट गईं;
उजड़े उपवन महकने बहकने लगे,
आया मधुमास सब उलझनें मिट गईं।
फिर से नाजों पली !
फिर से नाजों पली; —मुस्कराने लगी मुरझाई कली।
बंद खिड़की खुली।

भाग बिगड़े हुए फिर संवरने लगे;
राग टूटे हुए फिर उभरने लगे;
मीत छूटे हुए फिर गले मिल गये,
गीत रूठे हुये फिर बिखरने लगे।
दीपिकायें जलीं !
दीपिकायें जलीं; —मन के प्रांगन में संवरी है दीपावली।
बंद खिड़की खुली।

उसके तीन शब्द

—अजय नाकिब

मात्र तन ढकने को
फटे चीथड़ों में लिप्त
मरणासन्न भिखारिन सी
मेरी भारत माँ
मेरे करीब आ गई।
मैंने सोचा,
बस,
अब वही पुराने शब्द
वही वाक्य—
तुम विश्वासघाती हो !
तुम्हीं ने
मेरी फूल सी संस्कृति को
थोथी क्रांतियों के नाम पर
बस मसलकर रख दिया।
वह यह न बोली ॥
तुम अधर्मी हो, पतित हो !
तुम्हीं ने
वर्ण और जाति को
धर्म पर थोप दिया,
और अमूल्य धर्म को
भेद-भाव युद्ध में
बहते हुए खून के
भाव बेच रख दिया।
वह यह भी न बोली ॥
धूर्त !
तुम सा स्वार्थी भी कोई नहीं !
तुमने
सत्ता के बनाने में

भाषा-प्रांत की आड़ से
मुझे छिन्न-भिन्न कर दिया।
आज वह यह भी न बोली।।
बस
कांपती हुई उंगलियों से
झोली को फैला दिया।
मैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़
सोचने लगा,
मां की झोली को
उसकी इच्छित
संस्कृति से भर दूँ,
धर्म से भर दूँ,
भाषा से भर दूँ।
तभी
होंठ कुछ हिले
और वह बोली
"बाबूजी दस पैसे"!

———

एकांकी धारा

☐ अमर दीप : 'प्रमोद'

अमर-दीप

मोतीलाल 'प्रमोद'

अमर–दीप

लेखक—मोतीलाल 'प्रमोद'

1965

[प्रस्तुत एकांकी मंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत हुआ है]

पात्र

आशीराम	...	...	...	पिता
सुलोचना	...	...	...	माता
राज	...	...	...	पुत्र
राधा	...	...	...	पुत्री
नीरजा	...	...	...	बहू
देव	...	...	...	राज का मित्र
हमीद	...	...	...	,,
प्रीतमसिंह	...	...	...	,,
झग्गू	...	...	...	हकला नौकर

(दो सिपाही, तार वाला तथा अन्य दो स्त्रियां)

(प्रथम दृश्य)

[स्थान : एक देशभक्त आशीराम गुप्ता के मकान का एक कमरा।
समय : सायं पांच बजे।]

(पर्दा धीरे-धीरे उठता है। मंच पर एक लड़की अपनी अंजलि में एक जलते हुए दिए को लिए हुए है। पर्दा पूरा उठने तक वह कन्या सिर नीचे किए हुए है। फिर शनैः शनैः वह अपना सिर ऊपर उठाती है और उसके अधरों पर निम्न गीत के बोल थिरकते हैं।)

पावन ज्योति जले !
सदा रहे शासन इसका ही तिमिर कभी न पले !
पावन ज्योति जले !
रघुकुल दीपक ने आभा से अपनी तम का नाश किया।
ज्योतिवाह गीता गायक ने उर में दीपक बाल दिया।
अर्जुन के, कर्त्तव्य-पन्थ को कभी न फिर वह छोड़ गया।
स्नेह दिया परताप, भगत ने क्या वह था इक दीप नया ?
नहीं वही था, धमके प्रतिपल वही हमारे गगन तले !
पावन ज्योति जले !

(पर्दा धीरे-धीरे गिरता है)

(पर्दा पुनः उठता है)

(झग्गू चिलम पीता हुआ दिखाई देता है इतने में आशीराम का प्रवेश।)

आशीराम : झग्गू ! राज की मां कहां है ? (आशीराम की आहट सुनते ही झग्गू सावधानी से चिलम को छिपाकर सफाई करने लगता है।)

आशीराम : (क्रोध से) झग्गू ! राज की मां कहां है ? अरे ओ राज की मां।

झग्गू : बु बु···लाऊँ। मां जी को, को बु···बु···लाऊं।

आशीराम : हां ! जल्दी जा (झग्गू हाथ में टीपाय उठाकर जाने लगता है)

आशीराम : (क्रोध से) झग्गू ! (झग्गू रुककर टीपाय की ओर देखकर लज्जित-सा होता है और वह जल्दी टीपाय नीचे रखकर जाने लगता है।)

आशीराम : (फिर पुकारता है) झग्गू ! (झग्गू मुड़कर मालिक के कुछ निकट आकर थरथराते हुए हाथ जोड़कर कहता है।)

झग्गू : मा···मालिक !

आशीराम : अरे मैं पागल हो गया हूं ! **(कमरे में इधर-उधर फिरता हुआ)** पागल···! राज अभी तक नहीं पहुंचा। **(परेशानी प्रकट करते हुए)** कल शाम बरात जाने वाली है, क्या करूं, कुछ समझ नहीं आता। **(जेब से पत्र निकालकर झग्गू से कहता है।)** ले यह पत्र ! मदनलाल को देकर आ ! जल्दी आना समझे।

झग्गू : हां···हां स···स सरकार **(चुटकी बजाकर)** यूं··यूं·· यूं गया और यूं · यूं आया।

(झग्गू का प्रस्थान)

आशीराम : **(चिल्लाते हुए)** ओ राधा, अरी ओ बेटी राधा !

राधा : **(अन्दर से ही पुकारती है)** आई बापू।

(राधा का जल्दी से प्रवेश)

राधा : बापू, भैया आए क्या ?

आशीराम : कहां हैं तुम्हारे भैया ? **(इधर-उधर फिरता हुआ)** मैं पागल हो गया पागल, कहां हैं तुम्हारे भैया। ओह ! राधा तुम्हारी मां कहां है ?

राधा : मां ऊपर है, बुलाऊं ?

आशीराम : हां जल्दी जा ! **(ज्यूँ ही राधा जाने लगती है त्यों ही आशीराम फिर पुकारता है)** राधा !

राधा : **(रुककर)** हां बापू !

आशीराम : मेरा हुक्का कहां है ?

राधा : अभी लाई बापू।

आशीराम : ज़रा तम्बाकू दबा के भरना। **(राधा का प्रस्थान)** न मालूम झग्गू कहां मर गया।

(झग्गू का हाथ में स्यूटकेस लिए प्रवेश)

आशीराम : झग्गू ! तू इतनी देर तक कहां मरा था ? **(विस्मय से)** यह किसका स्यूटकेस है ?

झग्गू : छो··छो··टा मा, मा···लिक !

आशीराम : ओह ! छोटा मालिक आया क्या ?

झग्गू : हां, हां।

आशीराम : कहां है **(चिल्लाता है)** अरे ओ राज की मां सुनती हो ! राज आया राज !

(जल्दी से सुलोचना का प्रवेश)

सुलोचना : **(उत्तेजना के साथ)** चिल्लाते क्यों हो ?

(इतने में फौजी वर्दी पहनकर राज का प्रवेश, अन्दर आते ही राज

पहले मां के पद कमलों को छूता और फिर पिता के चरणों को छूकर उनसे गले मिलता है। माता-पिता आशीर्वाद देते हैं) सुखी रहो बेटा !

मां : अब मैं तुम्हें फौज में नौकरी नहीं करने दूंगी, मेरी आंखें तुम्हें देखने के लिए तरसती हैं।

आशीराम : **(झग्गू से)** अरे बुद्धू, तू खड़े-खड़े क्या मुंह ताक रहा है ? जा हुक्का ले आ।

राज : **(जूता निकालते हुए)** मां, मैं जानता हूं कि मेरे लिए तुम्हारे प्राण निकल रहे हैं पर मां सोचो तो सही जिस मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए बरसों से कितने ही मां के लालों ने हंस-हंसकर बलिवेदी को रम्य उद्यान समझकर अपनाया है और मां ! जिस मातृ-भूमि की आज़ादी के लिए भारतीय नारियों ने अपने सुहागों को हंसते-हंसते स्वतंत्रता संग्राम में भेज दिया और जो मातृ-भूमि अपने ही लालों के रक्त से सींची गई। जिस मातृ-भूमि ने बरसों बाद स्वतन्त्रता का सांस लिया उसकी विशाल सीमाओं की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है ? क्या तुम भूल गयीं मां ! कि कुछ वर्ष पूर्व शत्रु ने शान्ति भंग करने के लिए हम पर आक्रमण किया था। तो क्या तुम सोचती हो मां ! हम शत्रु पर फिर विश्वास करें और अपनी सीमाओं को बिना निरीक्षण छोड़ दें। **(इतने में ही देव अन्दर आकर झट जवाब देता है)**

देव : कभी नहीं।

पिता : कभी नहीं।

देव : तब तक हम दम नहीं लेंगे जब तक हम उस विषैली नागिन का सिर न कुचल देंगे **(राज की ओर)** राज ! आज तुम्हारी बातों ने मेरा खून खौला दिया है। जी चाहता है कि · ! **(हाथ मलते हुए इधर-उधर फिरता है)।**

(गाती हुई राधा का प्रवेश)

राधा : बन्दे मातरम् ! **(यह सुनकर सब सावधान होते हैं।)**

राज : अरी राधा !

राधा : भैया ! ! **(दोनों गले लगते हैं)**

राज : राधा, यह गीत तूने कहां से सीखा है ?

राधा : जब बहन का भाई मातृ-भूमि की रक्षा के लिए निकले तो बहन क्या घर पर नज़ारा देखती रहेगी।

राज : शाबाश बहन, शाबाश !

मां : अरे, बन्दे मातरम् की ओर ही तुम लोग लग गए। कुछ करना-धरना भी है कि नहीं ?

देव : आज्ञा दे दो मां क्या करना है ? यदि आज राज की शादी में मैं कुछ काम न करूं तो कल मेरी भी शादी होगी ! **(बीच में ही राज बोलता है)**

राज : ना बाबा ना, तू कुछ कर या न कर मुझ पर यह अहसान मत रख। मुझे दूसरों की क्या चिन्ता।

देव : अच्छा, यह बात, मैं दूसरा। **(देव जाने लगता है)**

राधा : सावधान ! चाय तशरीफ ला रही है। हाथ मुंह धो के जल्दी आ ! मैं चाय लाती हूं।

देव : हां चाय ? कहां है कि सब पूजाओं से बढ़कर पेट पूजा है ! मैं अभी आया हाथ मुँह धो के........ **(सभी हंसते हैं।)**

(पर्दा गिरता हैं।)

(दूसरा दृश्य)

(रात्रि के ठीक दस बजे आशीराम के घर में खूब चहल-पहल है। सब बहू की प्रतीक्षा में है। इतने में वर-वधू की डोली आती दिखाई देती है। कोई चिल्लाता है आ गये ! इतने में सब के सब वधू को देखने के लिये द्वार पर आते हैं बहन राधा का क्या कहना, वह कभी फूल मालाएं उठाती तो कभी थाली भूल जाती, थाली उठाती तो फूल मालाएं भूल जाती। आखिर जैसे-तैसे थाली तथा फूल मालाएं लेकर जल्दी-जल्दी आने लगती पर दैव की लीला न्यारी है। ज्यों ही वह बेचारी चलने लगती है त्योंही अकस्मात् वह ठोकर खाकर गिर जाती है। पर उसके मुंह से आह भी नहीं निकलती ! यथा-तथा अपने को सम्भालकर पुनः आगे बढ़ती है ! एक माला बहू के गले में डालकर दूसरी भाई के गले में डालना चाहती है ! पर उस बेचारी को क्या मालूम कि माला भाई के गले से नीचे गिरगी !)

पिता : **(ऊंचे स्वर में)** राधा ! यह तुम्हें आज क्या हो गया है ! हे प्रभु ! न जाने क्या होने वाला है !

राधा : **(राधा की आंखों से आंसुओं की दो बूंदें गिरती है ! वह शीघ्र माला को थरथराते हुए उठाने लगती है और रोती हुई कहती है।)** भैया मुझेमाफ करना।

राज : **(बहन के हाथ से माला छीन लेता है और कहता है)** पगली, चल उतार आरती, देर हो गई।

राधा : **(आरती की थाली लेकर उसमें से टीका निकालती है। ज्यों ही टीका लगाने के लिए हाथ उठाती है त्यों ही दो फौजी सिपाही हाथ में**

तीन लिफाफे लेकर आते हुए दिखाई देते हैं पहले वे दोनों सैनिक रीति के अनुसार स्ल्यूट देते हैं और बाद में राज, हमीद और प्रीतम-सिंह को एक-एक लिफाफा देते हैं! तीनों लिफाफों को खोलकर पढ़ने लगते हैं और एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं।)

एक सिपाही : ···सर···मेजर साहिब ने ग्यारह सौ ओवर पर रिपोर्ट करने को मांगा है! सर! बाहर जीप खड़ी है।

माता पिता: **(एक साथ)** क्या है राज!

राज : कुछ नहीं!

पिता : **(प्रीतमसिंह की ओर)** क्या है बेटा प्रीतमसिंह? **(प्रीतमसिंह चुप रहता है।)**

पिता : आखिर कोई बोलो तो, क्या है बेटा हमीद?

हमीद : बात अब्बाजान यह है कि लुटेरों ने काश्मीर पर फिर हमला किया है।

सब एक साथ: लुटेरों ने काश्मीर पर फिर हमला किया!!

हमीद : हां अब्बाजान। हमें काश्मीर जाने का आर्डर आया है, हमें अभी जाना है।

राज : **(सिपाहियों की ओर)** तुम जा सकते हो!

हमीद : **(अपने में ही खोया हुआ बोलता है।)** इस बार लुटेरे हम से बचकर नहीं जा सकते।

(राज का प्रस्थान)

हमीद : मां तुम क्यों गमगीन हो भारतीय नारी होकर तुम गमगीन हो। हर मां यही कहा करती है कि सच्चा पूत वही है जो माताओं और बहनों की लाज की हिफाज़त करे। उसी नारी को मां बनने का हक है। जिसका बेटा 'मां' इस पाक लफ्ज़ पर ही मर मिटे!

देव : **(राधा की ओर)** राधा बहन तुम भी चिंता करती हो।

राधा : **(कुछ होश में आकर)** चिंता? **(कुछ मुस्कराहट के साथ)** किस बात की चिंता, देव भैया, कैसी बातें करते हो! मुझे अपने उस भाई पर गर्व है। मैं तो भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि प्रत्येक बहन को राज, प्रीतमसिंह और हमीद जैसे वीर भाई मिलें। देव भैया, प्रत्येक भार-तीय नर-नारी को यह मन्त्र सदा याद रखना चाहिए!

जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गाद् अपि गरीयसि

प्रीतमसिंह: शाबाश बहन जी, तुम्हें किस तरह धन्यवाद दूँ। तुम आदर्श बहन हो! यदि तुम जैसी बहन प्रत्येक भाई को मिले तो कोई भाई कर्त्तव्य पथ से हट जाये, यह असम्भव है, नामुमकिन।

(राज का प्रवेश)

हमीद : राज तुम आ गए, मैं भी तैयार होकर अभी आता हूं ! (प्रस्थान)

राज : (अपनी रोती हुई मां के पास जाकर चरण छूकर कहता है।)— मां, मैं जा रहा हूं। मुझे आशीर्वाद नहीं दोगी मां !

मां : (हिचकियां लेती है।)

राज : मां ! चिंता मत करो ! मैं तुम्हारे अमृतमय दूध को लज्जित नहीं करूंगा मां ! मां तुम ऐसा आदर्श उपस्थित करो कि प्रत्येक मां अपने मातृत्व में गौरव का अनुभव करे। मां तुम भारत की वीर नारी हो, वीर माता हो। तुम यह संसार से कह दो कि भारतीय मां अपने लाल को अमृतमय दूध पिलाकर बड़ा करती है केवल इसलिए कि वह मातृ-भूमि की रक्षा के निमित सहर्ष आत्म-बलिदान कर सके। ममता के वशीभूत हो मुझे कर्त्तव्य पथ से विचलित न कर दो मां !

मां : (रोती हुई) भगवान तेरी रक्षा करे, मेरी ममता तेरी छाया बने।

राज : (पिता की ओर जाकर) पिता जी आशीर्वाद दीजिये। (चरण छूता है।)

पिता : जा बेटा जा, शत्रु का मुंह काला करके लौट आ।

राज : चिंता न कीजिये, पिता जी, मैंने उस भारत-भूमि मैं जन्म लिया है, जिस भारत-भूमि में भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जैसे वीर जन्मे हैं। पिताजी, मैं उस मातृ-भूमि में जन्मा हूं जहां झाँसी वाली रानी जैसी वीर नारी जन्मी।

पिता : मुझे तुम से यही आशा है बेटा !

हमीद : चल राज देर हो रही है।

(राज नव-वधू की ओर दृष्टि डालता है, राधा के बिना सब नव-वधू को छोड़कर अन्दर चले जाते हैं। राज अपनी पत्नी की ओर बढ़कर कहता है।)

राज : मैं जा रहा हूं।

वहू : कब तक लौटेंगे ?

राज : दस-पन्द्रह दिन भी लग सकते हैं और एक महीने की देर भी लग सकती है। हां, मेरी एक विनती है मां जी और पिता जी को किसी प्रकार का कोई भी कष्ट न पहुंचे ! उनकी ओर पूरा-पूरा ध्यान देना ! (कलाई पर बन्धी घड़ी की ओर देखकर) ओह ! देर हुई अच्छा, मैं जाता हूं (राधा की ओर) राधा परसों रक्षा-बन्धन है मुझे भूलना नहीं। (राधा आंखों से अश्रु धारा बहाती है।)

(राज का प्रस्थान)

राधा गाती है—

शत्रुनाश को आज उठा है सारा हिन्दुस्तान।
कफनशीश पर और हथेली पर ले अपनी जान ।।
घर-घर में हैं वीर शिवा, लक्ष्मी, आजाद अनेक।
मातृ-भूमि की आन रहे बस यह तो अपनी टेक।
बन प्रलयङ्कर करते हैं हम रिपुओं का आह्वान ।।
शत्रुनाश को०

(तीसरा दृश्य)

(रक्षा-बन्धन का त्यौहार।)

(बहन राधा श्रीकृष्ण की मूर्ति के पास हाथ में राखी लेकर आंखों से आंसू बहाकर गाती है)

भैया की कलैया पै सजेगी मेरी राखी
प्यार के तारों से बनी है।
प्यार के तारों से बनी है।
याद दिलायेगी बहना की बतियों की ।।२।।
राखी सन्देश-सनी है।
हाँ, प्यार के तारों से बनी है।
प्यार के तारों से बनी है।
बल भर देगी भुजाओं में भैया के ।।२।।
राखी में शक्ति घनी है।
हां राखी में शक्ति घनी है।
प्यार के तारों से बनी है।
मार गिरायेगी शत्रु असंख्यों ।।२।।
राखी यह विशिख-अनी है।
हाँ, राखी यह विशख-अनी है।
प्यार के तारों से……।

(बहू का प्रवेश)

बहू : राधा…राधा बहन ! मांजी बुलाती हैं।

(बहू और राधा का प्रस्थान)

(आशीराम का प्रवेश वह कहीं जाने को ही होता है कि नौकर तार लेकर आता है।)

आशीराम: **(तार पढ़ने बैठता है, तो झट तार नीचे पटक कर चिल्लाने लगता है।)** यह नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता। **(चिल्लाने**

की आवाज़ सुनकर मां, बहन आदि सबों का प्रवेश। पिता इनको देखकर पत्नी को संकेत करते हुए कहता है) राज की मां, यह नहीं हो सकता। यह नहीं हो सकता।

मां : क्या नहीं हो सकता ?

(पिता पागल जैसा इधर-उधर फिरते हुए यही कहता जा रहा है 'यह नहीं हो सकता ! यह झूठ है।' उसी क्षण राधा की दृष्टि तार पर पड़ती है वह उसे उठाकर पढ़ती है, पढ़कर वह भी चिल्लाने लगती है)

राधा : मां भैया !

मां : राधा···बेटा राज ! तुम मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकते।

राधा : मां-मां (बहू तार उठाकर पढ़ने लगती और काष्टवत् रह जाती है। न हिलना न डुलना, न पलकों की गति! वह धीरे-धीरे कृष्ण मूर्ति के पास जाकर बिना बोले खड़ी रहती है और अपनी चूड़ियां तथा जेवरों को उतारकर कृष्ण के सामने छोड़ती है।)

पिता : (कुछ स्वस्थ होकर और जैसे किसी स्वप्न से जाग कर) नहीं, नहीं मुझे रोना नहीं चाहिए, मैं राज जैसे वीर बेटे का बाप हूं जो मातृ-भूमि की रक्षा के लिए बलिदान हो गया।(कृत्रिम हंसी के साथ) अरे राज की मां! तुम रोती हो, हा-हा-हा, देख मैं हंसता हूँ। तुम भी हंसो, ज़ोर से हंसो, हां आज आशीराम गुप्ता ने अपने लाल को मातृ-भूमि की रक्षा के लिए अमर बना दिया। कौन कहता है कि वह मर गया ! इतिहास उसके उज्जवल चरित्र से सदा जगमगाता रहेगा ! भारत के सब नर-नारियों की जीभ पर उसका नाम सदा रहेगा। वह मरा नहीं, मेरा बेटा मरा नहीं। वह अमर-दीप है। वह संसार को अपने प्रकाश से प्रकाशित करेगा। वह अमर है, वह अमर दीप है !

(प्रस्थान)

(चौथा दृश्य)

(मां और दो अन्य स्त्रियां बैठी हुई दिखाई देती हैं ! इतने में बहू किसी काम के लिए अन्दर आती है ! उसे देखकर अन्य दोनों स्त्रियां आपस में बातें करने लगती हैं।)

(पहली दूसरी को हाथ से बहू की ओर इशारा करती है।)

दूसरी : हां आज का ज़माना ऐसा ही है।

पहली : मुझे पहले ही इसके लक्षण दिखाई दिये ! आते ही सुहाग को···

दूसरी : (हाथ से मां की ओर इशारा करके) न जाने इस बेचारी को अभी क्या-क्या देखना है।

पहली : जब से बेटे की शादी की तब से इसका रंग ही बदल गया। (मां नीचे मुंह करके रोने लगती है।)

दूसरी : (पहली से कहती है) उठो रीता, देर हुई ।

पहली : चलो भगवान भला करे, यह संसार तो ऐसा ही है ।

(दोनों का प्रस्थान)

(हाथ में चाय का गिलास लेकर बहू का प्रवेश ।)

बहू : मांजी, मांजी ।

मां : (ऊंचे स्वर में) क्या है ? (खड़ी होकर उसके हाथ से चाय का गिलास जमीन पर गिरा देती है और कहती है ।) जब तक तू इस घर में है, तब तक मेरे लिए पानी की एक बूंद भी विष के बराबर है ! चली जा यहां से, डाइन कहीं की आते ही मेरे लाल को……

(बहू रोती हुई मां के चरणों पर गिर जाती है)

मां : मनहूस कहीं की, दूर हट मेरी नज़रों से । (मां अपने चरणों से उसे दूर हटाकर अन्दर चली जाती है ।)

बहू : (रोती हुई) भगवन् ! मैं अब क्या करूं । मुझे अपने पास बुलाओ भगवन् । मैं मुक्ति नहीं चाहती, स्वर्ग नहीं चाहती । बस मैं केवल इतना ही चाहती हूं कि मुझे इस धरती से उठा लो । मुझ से अब अपना मुंह किसी को नहीं दिखाया जाता भगवन्, भगवन (अपना सिर भगवान के चरणों से टकराती है और गाने लगती है ।)

उठा लो भगवन् मुझे यहां से करूं मैं फरियाद क्या किसी से,
न चाह जीने न स्वर्ग की है, न मुक्ति पाने की आरज़ू है ।

राधा : भाभी, चल भोजन नहीं करना है ।

बहू : नहीं, मुझे आज भूख नहीं ! मांजी ने भोजन किया ?

राधा : वह भी कहती हैं कि मुझे भूख नहीं ।

बहू : हां ! अभी तक उन्होंने भोजन नहीं किया । दो तो बज गए ! डॉक्टर कल ही कह रहा था कि मांजी को कभी भूखे न रहने देना, क्योंकि उनकी आंखों की रोशनी भी कम होती जा रही है ।

(दोनों जाती हैं)

राधा : (राधा का प्रवेश, घड़ी की ओर देखकर) ओह ! रात के आठ बज गए । न जाने झग्गू इतनी देर तक कहां मरा ।

(बहू का प्रवेश)

बहू : राधा बहन । झग्गू आया ! न जाने डॉक्टर मिल भी गया कि नहीं ।

(झग्गू का प्रवेश)

झग्गू : रा…रा…रा…धा बहन । यह लीजिए मां…मांजी के लिए दवा ।

(दवा मेज पर रखकर चला जाता है)

राधा : (झग्गू से) जा अन्दर पिताजी बुला रहे हैं ।

(झग्गू का प्रस्थान)

बहू : (धीरे-धीरे मूर्ति के पास खिड़की की ओर जाकर आसमान की ओर देखती है। न जाने किस दुनिया में खो जाती है ! तभी ध्यान टूट जाता है जब देव का प्रवेश होता है। (देव को देखकर आश्चर्य से) कौन है ?

देव : मैं हूँ देव।

बहू : ओह ,आप!

देव : आप इतनी उदास क्यों हो बहन। मां जी ने आज फिर कुछ कहा है क्या ?

बहू : नहीं, उन्होंने मुझे कब कुछ कहा जो आज कहतीं।(रोती हुई)मेरा तो अपना ही मन्द भाग्य है ! मुझे कौन क्या कुछ कह सकता है।

देव : बहन ! भाग्य बलवान होता है ! जहां वह रखता है, जिन परिस्थितियों में रखता है, उनमें अपने कर्त्तव्य को सामने रखकर चलना चाहिए। केवल सदा हिम्मत और धैर्य की आवश्यकता होती है। अच्छा छोड़ दो इन बातों को। मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाता हूं। मैं फौज में भर्ती हुआ।

नीरज : (खड़ी होकर) हाँ, फौज में भर्ती।

देव : हां भाभी, वर्षों बाद मेरी इच्छा पूरी हुई।

(इतने में अन्दर से ही पुकारती हुई मां का प्रवेश)

मां : यह कौन है ?

देव : मैं हूं मां।

मां : कौन ? देव बेटा।

देव : नमस्ते मांजी (देव माँ को कुर्सी पर बिठाता है। (बैठे-बैठे माँ देव से कहती है) क्यों बेटा, आज कैसे रास्ता भूल पड़े ?

देव : हां मां, नौकरी की तलाश में था।

मां : मिल गई !

देव : हां मां ! ऐसी नौकरी मिली जिसकी इस समय बहुत आवश्यकता है।

मां : कौन-सी नौकरी, किसकी आवश्यकता ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

देव : हां मां, जिसकी इस समय बहुत ही आवश्यकता है, फौज की।

मां : (दुःखी भाव से) हां फौज की ! यह तुमने क्या किया देव बेटा ! यह तुमने क्या किया।

(बहू का प्रस्थान)

मां : तुम तो अपने कुल के चिराग हो, दिये हो।

देव : मां घर का दिया कभी न कभी बुझ ही जाता है। ऐसा दिया बनने की कोशिश करना जो चांद और सूरज की तरह सदा प्रकाश देता रहेगा।

देव : (**चक्कर लगाते हुए**) अब तो फिर ऐसा समय आया है जबकि प्रत्येक भारतीय नर-नारी को स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाना है।

(नर्सों की वर्दी पहनकर राधा का प्रवेश)

राधा : (**अन्दर आकर**) नमस्ते देव भैया।

(बहू का चाय लेकर प्रवेश)

देव : (**देव राधा की ओर देखकर**) ओ राधा! (**हाथ से वर्दी की ओर इशारा करके**) यह कब से?

(बहू चाय का प्याला देव के हाथ में देती है।)

राधा : भैया आप खुद सवाल भी करते हैं और खुद ही जवाब भी देते हैं। क्या आप इतनी जल्दी भूल गए। आप ही तो अभी-अभी मां जी से कह रहे थे कि अब तो फिर ऐसा समय आया है जबकि प्रत्येक भारतीय नर-नारी को स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाना है।

देव : (**चाय का प्याला नीचे रखकर**) भूल नहीं गया। क्या कहूं बहन! मेरे हृदय में कौन-सी ज्वाला धधक रही है। (**घड़ी की ओर देखकर**) ओह! देर हुई। अच्छा मां आज्ञा दे दो। नमस्ते! नमस्ते भाभी!

(पर्दा गिरता है)

(पांचवां दृश्य)

(बहू बैठे-बैठे न जाने अपने मन में क्या सोचती-सी जा रही है। (इतने में नर्सों की वर्दी पहने राधा का प्रवेश)

राधा : भाभी, भाभी।

नीरजा : हां, हां।

राधा : भाभी, यह समय भारतीय नारी के लिए आहें भरने का नहीं, कुछ करने का है।

नीरजा : (**खड़ी होकर, आंखों से आंसू बहाती हुई कहती है।**) मुझ अभागिन से क्या होगा, राधा बहन।

राधा : क्या नहीं होगा, जो मुझसे होगा वही तुम से भी होगा। (**पास जाकर**) भाभी! मेरी एक छोटी-सी विनती मान लोगी।

नीरजा : क्या?

राधा : तुम कल से मेरे साथ आया करो।

नीरजा : हां।

राधा : हां भाभी, क्या मातृभूमि की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं।

नीरजा : (**क्रन्दन स्वर में**) मैंने कब अस्वीकार किया पर…

राधा : पर से काम नहीं चलेगा, मैं आज ही पिताजी से कहूंगी (**यह कहते-कहते राधा का प्रस्थान, पीछे नीरजा का प्रस्थान, एक ओर से उन दोनों का प्रस्थान, दूसरी ओर से गमगीन आशीराम का प्रवेश। कमरे में इधर-उधर दृष्टि डालकर आशीराम ऊंचे स्वर में नौकर को पुकारता है।**)

आशीराम : झग्गू ! अरे ओ झग्गू… (**कुर्सी पर बैठकर पुनः पुकारता है**) झग्गू !

झग्गू : स…स…स…सरकार, अभी आ…आ…आया।

आशीराम : अच्छा जाओ। (**झग्गू का प्रस्थान**)

(**कुछ ही क्षण बाद हाथ में हुक्का लेकर झग्गू का पुनः प्रवेश**)

झग्गू : स…स…सरकार (**सरकार के सामने हुक्का रखकर कहता है**) स…स…सरकार पी…पी…पीजिये। (**झग्गू का प्रस्थान**)

(**आशीराम रेडियो का स्विच ऑन करता है, हुक्के के कश लगाता है, रेडियो से हिन्दी में समाचार प्रसारित होते हैं।**)

रेडियो से : …अब आप हिन्दी में समाचार सुनिये ! हमारी सेनायें सभी क्षेत्रों में दुश्मन को भारी नुकसान पहुंचाकर आगे बढ़ रही हैं। राष्ट्रपति ने स्थल सेना के तीन अफसरों को परमवीर-चक्र तथा पन्द्रह जवानों को अशोक-चक्र प्रदान किए हैं।

(**माँ का प्रवेश, वह एक कुर्सी पर बैठ जाती है। सिर थामे रेडियो सुनती है।**)

समस्त देश से शहरी बचाव प्रशिक्षण के लिए करोड़ों लोगों ने अपनी सेवायें अर्पित की हैं। लीजिये अब आप पूरे समाचार सुनिए—

हमारी सेनायें सभी क्षेत्रों में दुश्मन को भारी नुकसान पहुंचाकर आगे बढ़ रही हैं। राष्ट्रपति ने स्थल सेना के तीन अफसरों को परमवीर-चक्र तथा पन्द्रह जवानों को अशोक-चक्र प्रदान किए हैं। परमवीर-चक्र पाने वाले अफसरों के नाम हैं—केप्टन राज गुप्ता (मरणोपरान्त) केप्टन आशिफ अली और सेकिण्ड लेफ्टिनेंट रणधीरजसिंह। केप्टन राज गुप्ता को अपनी रेजिमेंट का कुशल नेतृत्व करने एवं युद्ध क्षेत्र में अपनी जान हथेली पर रखकर दुश्मन के तोपखाने को भारी नुकसान पहुंचाने पर यह चक्र प्रदान किया गया।

स्मरण रहे केप्टन राज गुप्ता भारतीय सेना के एक सुयोग्य कर्त्तव्य-निष्ठ आफीसर थे। मातृ-भूमि के ऐसे अमर सपूतों पर हम सदा गर्व करते रहेंगे। ऐसे व्यक्तित्व सदा हमारा मार्ग प्रकाशित करते रहेंगे।

(मां की आंखों से आंसुओं की धार बहती है। सारी लाइट ऑफ होती है। पर्दा धीरे-धीरे बन्द होने लगता है। भारत का मानचित्र उभरता है और उसके सामने एक द्वीप जगमगाता है।)

(नेपथ्य के पीछे)

दीप जले···दीप जले···
जीवन दीप जले···

———

कथा धारा

- ☐ टोकरी भर धूप : प्रो० हरिकृष्ण कौल
- ☐ ,, ,, ,, : श्री जवाहरलाल कौल

दाँव

छः बजे का समय है। 'तलू-लत्रें' के जीवन पर आधारित अंग्रेज़ी फिल्म देखने जा रहा हूँ कि लाल चौक के पास कौल के दर्शन होते हैं। कौल मेरा मित्र है और आज मैं उसे कई दिन के बाद देख रहा हूँ। इसलिए कुछ प्रसन्नता के कारण और कुछ शिष्टाचार निभाने के हेतु मुस्करा देता हूँ। कौल भी मुस्करा कर मेरे निकट आता है।

तीन-चार दिन के बाद मिले हैं, अतः करने को तो बहुत सी बातें हैं। पर शुरू कैसे करूँ, इसी उधेड़-बुन में हूँ कि कौल पूछता है, "कहाँ जा रहे हो ?"

"कहीं नहीं, बस यों ही घूम रहा हूँ।"

"तो चलो 'कॉफी हाउस' चलें।" कौल सुझाव रखता है।

"चलो।"

"किन्तु कॉफी तुम्हें पिलानी होगी।"

"मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"सच ?"

"हाँ, एक सप्ताह पहले ट्यूशन के तीस रुपये मिले थे। बीस रुपये घर वालों को दिये, साढ़े छः में यह बुश्शर्ट खरीदी, सवा रुपये में कल 'मोलिन रूज' देखी, आठ आने···"

"मेरे पास भी पैसे नहीं हैं, नहीं तो मैं ही पिलाता।" कौल मेरी बात को बीच में ही काट कर कहता है।

यह सोचकर कि इस समय अब पिक्चर देखना अच्छा नहीं रहेगा, मैं प्रस्ताव रखता हूँ, "चलो, थोड़ी देर के लिए 'बंड' पर घूमें।" वह सिर हिलाकर अपनी अनुमति प्रकट करता है और सिगरेट निकालकर खुद सुलगाता है और एक मुझे देता है।

कौल मेरा मित्र है और मुझे उसकी मित्रता पर गर्व है। अच्छा आदमी होने के साथ-साथ वह एक अच्छा कवि भी है। बड़ी प्यारी कविताएँ लिखता है। किन्तु गत वर्ष उससे एक गलती हो गई, जिसका फल अब तक भोग रहा है। मज़े में सरकारी नौकरी कर रहा था कि आगे पढ़ने की सनक सवार हो गई। दो साल की परमानेंट सर्विस को तिलांजलि देकर उसने एम० ए० में दाखिला ले लिया। प्रतिभावान था ही, छात्र और अध्यापक, दोनों उससे प्रभावित हुए थे। किन्तु समय

पर रुपयों की व्यवस्था न होने के कारण परीक्षा में न बैठ सका था; और अब इस समय दर-ब-दर फिर रहा है। बेचारा!…

"क्या सोच रहे हो?" कौल की आवाज़ सुनकर मेरा ध्यान टूटता है।

"तुम्हारे विषय में ही सोच रहा था।"

"क्या सोच रहे थे?" वह उत्सुकता से पूछता है।

"यही ट्रेजडी जो तुम्हारे साथ…"

"हटो, कोई और बात करो। देखो उस बैल जैसे सरदार जी ने कैसी खूबसूरत बीवी पाई है।" वह बात को हँसी में उड़ा देता है।

हम आगे बढ़ते हैं। कुछ देर की चुप्पी के बाद कौल पूछता है, तुम्हारे पास दो रुपये तो नहीं होंगे?"

"मैंने जो कहा…"

"मुझे अभी नहीं, कल चाहिएँ।"

"जब तक दूसरा महीना न आये, मैं पॉपर ही रहूँगा। एक सप्ताह पहले मुझे अवश्य तीस रुपये मिले थे, जिसमें से मैंने बीस रुपये घर वालों को दिए, साढ़े छः रुपये में यह बुश्शर्ट खरीदी, सवा रुपये में कल 'मोलिन रूज' देखी, आठ आने बाल-कटाई के दिए, दस आने…" लेकिन उसे मेरे आय-व्यय के हिसाब से क्या दिलचस्पी हो सकती है? मैं अपनी बात को बीच में ही काटकर उससे पूछता हूँ, "तुम्हें दो रुपये किसलिए चाहिएँ?"

"सोचा था अपने मित्र प्राण जी ओवरसियर के पास अच्छाबल चला जाऊँ। यहाँ सड़कों पर बिना किसी उद्देश्य के फिरते-फिरते तंग आया हूँ। शायद वहाँ कुछ शान्ति मिले और मैं रेडियो के लिए तीस-पैंतालीस मिनट का ड्रामा लिख सकूँ।"

"दो-ढाई रुपये तो वहाँ आने-जाने में ही लगेंगे।"

"हाँ, वे मुझे कल अपने बड़े भाई साहब से मिला रहे हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी जेब में कुछ पैसे होने चाहिएँ।"

"यदि मेरे पास पैसे होते, तो विश्वास रखो…"

"मुझे विश्वास है कि तुम सच कह रहे हो।" वह मुस्करा देता है।

चलते-चलते हम शेरे-कश्मीर पार्क में पहुँचते हैं जिसका नाम शेरे-कश्मीर के अपदस्थ होने के बाद नया कश्मीर पार्क रखा गया है। चिनार के नीचे एक बेंच पर बैठकर बातें शुरू होती हैं। साहित्य, दर्शन, राजनीति, कश्मीर की वर्तमान दशा, 'स्पेशल-स्टैटस' की मेहरबानियाँ, स्थानीय स्कैण्डल, हर विषय पर चर्चा होती है। कौल के विचार बहुत ही सुलझे हुए हैं। हर बात की निराले दृष्टिकोण से व्याख्या करता है कि मैं दंग रह जाता हूँ। उसकी बातों से प्रभावित हुआ हूँ, यह दिखाने के लिए मैं उसे सिगरेट पेश करता हूँ।

वह सिगरेट लेने से इन्कार करता है—"भूख बहुत लगी है, इस समय सिगरेट

नहीं पिया जाएगा।" मुझे भी भूख अनुभव होती है। किन्तु मेरे पास दो ही रुपये हैं। एक रुपया तो कल पिक्चर देखने में खर्च होगा। ऐसी फिल्में कश्मीर में मुश्किल से ही आती हैं। फिल्म न भी देखूँगी तो भी पहली तारीख तक जेब में कुछ पैसे रहने ही चाहिएँ। मैं चुप रहता हूँ।

किन्तु भूख मुझे बुरी तरह सताने लगती है। कौल की हालत शायद मुझसे भी बुरी हो। मैं अन्दर की जेब में हाथ डालता हूँ। चाय और समोसे या चाय और पकौड़े में केवल नौ आने खर्च होंगे। यह नौ आने खर्चकरना मेरे लिए मुश्किल तो है, पर अधिक नहीं। किन्तु तभी खयाल आता है कि कौल क्या समझेगा? अभी मैंने उससे कहा है कि मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं अन्दर की जेब से ड्राइ-क्लीनर की रसीद निकालता हूँ। फिर तह करके उसे वापस जेब में रहता हूँ।

"चलो अब चलें।" कौल उठ खड़ा होता है। मैं भी उठकर चलने लगता हूँ।

अँधेरा होने लगता है। बातें जो करनी थीं, हो चुकी हैं। अतः हम दोनों चुपचाप चलते हैं। कुछ दूर चलकर नगर का प्रसिद्ध बुक-स्टाल आता है। दोनों भीतर चले जाते हैं। 'ज्ञानोदय' का प्रणय अंक आया है, यह देखकर हमें एक निराली खुशी होती है। भूखे कुत्तों की भाँति पत्रिका पर टूटकर पन्ने पलटने लगते हैं। बहुत समय बीतने के बाद ध्यान आता है कि यह उचित नहीं है। इसलिए चुपके से पत्रिका नीचे रखकर बाहर निकलते हैं। सहसा कौलके मन में एक विचार आता है और वह लपक कर पत्रिका उठाता है। फिर काउण्टर पर जाकर दुकानदार से कहता है, "देखिए, यह पत्रिका आप अन्दर मेरे लिए रिजर्व रखिये। इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं कल या परसों आकर ले जाऊँगा।

"कोई बात नहीं। आप इस पत्रिका को वहीं रखिए। जब आपको ज़रूरत होगी, हम देंगे।" कहकर दुकानदार एक भद्दी हँसी हँसता है। मैं तिलमिला उठता हूँ और जी चाहता है कि उसका मुँह नोच लूँ।

दुकान से निकल कर कौल मुझसे कहता है, "यदि मैं अच्छाबल नहीं गया, तो यह अंक जरूर खरीदूंगा।" मैं 'हूँ' भर करके रह जाता हूँ।

अँधेरा बढ़ता ही जाता है और हम दोनों धीरे-धीरे चलते हैं। चलते क्या हैं, किसी तरह अपनी टाँगों को घसीटते हैं। दोनों में से किसी को भी कोई बात छेड़ने की हिम्मत नहीं होती। आस-पास भी खामोशी छाई है। यह खामोशी धीरे-धीरे मेरे सारे शरीर में ज़हर की तरह छा जाती है और मुझे लगता है कि मैं अभी औरतों की तरह फूट-फूटकर रो पड़ूँगा।

"बाबूजी ज़रा एक मिनट!" लैम्पपोस्ट के नीचे बैठा एक आदमी हमें बुलाता है और खामोशी टूटती है। हम पास आकर प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखते हैं।

"देखिए बाबू, यह ताश के तीन पत्ते हैं : पंजा, नहला और बेगम।" कहकर वह आदमी सामने बिछाये टाट के टुकड़े पर तीन पत्तों को उलटा करके रखता है

ग्रौर फिर तेज़ी से बन्द पत्तों के स्थान-क्रम में परिवर्तन लाता रहता है।

तीन पत्तों का पुराना जुआ है, मैं समझ जाता हूँ।

"देखते क्या हो बाबू ? हो जाय एक बाज़ी' आप जिस पत्ते पर पैसे रखें, यदि वह बेगम निकल आये, तो आपको दो के चार, पाँच के दस ग्रौर दस के बीस रुपये मिलेंगे।"

मुझे दीखता है कि जिस पत्ते के कोने के पास एक छोटा-सा धुँधला दाग है, वेगम होगा, किन्तु पैसे न लगाकर चलने लगता हूँ। तभी कौल जेब से दो रुपए का नोट निकालकर एक पत्ते पर रखता है। मुझे तनिक विस्मय होता है।

पत्ते उलटाये जाते हैं और कौल का पत्ता नहला निकल आता है। दाँव हार कर कौल के चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है।

"एक बाजी और !" वह आदमी हँसकर फिर पत्ते बिछाता है। किन्तु कौल मेरी बाँह पकड़कर मुझे चलने का इशारा करता है।

...लेकिन यह नहीं हो सकता है ! कौल 'बड़े भाई से मिलने वाले' दो रुपयों से इस प्रकार हाथ नहीं धो सकता है ! मैं अब समझ जाता हूँ। अच्छाबल जाने के लिए न जाने कितने दिनों से यह दो रुपए उसने बचाकर रखे होंगे। नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।...और मैं भी दो रुपए की बाज़ी लगाता हूँ। पत्ते उलटाए जाते हैं और दाग वाला पत्ता बेगम के स्थान पर पंजा निकल आता है। मैं चुपके से खिसकता हूँ।

अँधेरा काफी हो चुका है। हममें कोई बात नहीं होती, जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर वही खामोशी ? नहीं, इस बार मुझसे यह सहन नहीं हो सकती। यह मेरी जान लेकर ही रहेगी। इसे किसी भी प्रकार तोड़ना होगा। मैं सिगरेट निकाल कर कौल की ओर बढ़ाता हूँ—"लो पियो।"

कौल सिगरेट ले लेता है।

———